वर्ष १ अंक ४
विक्रम संवत् २०७५ पौष
जनवरी २०१९

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

जनवरी २०१९

वर्ष–१ अंक–४ ,
विक्रम संवत् २०७५
दयानान्दाब्द– १९५
कलि संवत् – ५११९
सृष्टि संवत् –१,९६,०८,५३,११९

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६५७६५११३)

❖

समन्वय सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(९९९३९७०९४०)

❖

आकल्पन
कुलदीप कुलश्रेष्ठ (दिल्ली)
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
ए–११,त्यागी विहार, नांगलोई,
दिल्ली–११००४१
चलभाष– ८१७८७१०३३४

अनुक्रम

विषय	पृष्ठ
१ शिक्षा और संस्कार – १ (सम्पादकीय)	०३
२ पश्चिमी व वामपंथी इतिहासकारों......	०४
३ साथी कहो! कहाँ से लाऊँ ?	०८
४ India Without Scholar Brahmins	०९
५ धर्म और सम्प्रदाय	१०
६ ये नव वर्ष हमें स्वीकार नहीं	१६
७ दोहे	१६
८ यज्ञों से ऋण मुक्ति	१८
७ ऋग्वेद में कुम्भ शब्द के प्रयोग	२१
९ राम नाम अपराधों को न्यूट्रलाइज......	२४
१० चंवर वंश : इतिहास के आइने में	२६
११ आजादी के मंत्र को जनांदोलन......	२८
१२ पाती आयी है	३०

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – www.aryalekhakparishad.com
फेसबुक https://www.facebook.com/आर्यलेखकपरिषद्

Digital

शिक्षा और संस्कार – 1

आर्ष क्रान्ति के गत अंक में हमने मनुष्य को परिभाषित करने का प्रयत्न किया था और मनुष्य किसे कहते हैं यह महर्षि दयानन्द के शब्दों में ही बताया था। महर्षि दयानन्द की सोच का मनुष्य बनाना पड़ता है। इसके लिए एकमात्र साधन है 'शिक्षा और संस्कार'। बनाने वालों को भी शिक्षित और संस्कारित होना अनिवार्य है अतः '**मनुर्भव जनया दैव्यम् जनम्**' उन्हीं के लिए उपदिष्ट है। शिक्षा और संस्कार का ज्ञान ऋषियों से ही प्राप्त होता है क्योंकि वे परमेश्वर के ही प्रतिनिधि होते हैं जो कि सम्पूर्ण ज्ञान का अविनाशी मूल स्रोत है। प्रत्येक ऋषि उसी के द्वारा प्रदत्त ज्ञान का उपदेश करता है।

संस्कार का अर्थ है दोषों को हटा कर शुभ गुणों का आधान करना '**दोषान् अपनीय शुभ गुणाधानम् संस्कारः**'। पुरुष के कायिक, वाचिक और मानसिक दोषों को हटाना, पश्चात् उसमें उपयोगी शुभ गुणों को प्रतिष्ठित करना यही मानव निर्माण है। इससे मनुष्य मेध्य बनता है। मेध्य का अर्थ है संस्कृत, शुद्ध, पवित्र, ग्राह्य उपयोगी आदि। कहा गया है –

अमेध्यो वै पुरुषः यदनृतम वदति।
मेध्यो भूत्वा व्रतमुपयानीति।

पुरुष अमेध्य हैं क्योंकि झूठ बोलता है, उसे चाहिए कि मेध्य हो कर ही शुभ कार्य के समीप जावे । मनुष्य निर्माण करने वालों के लिए यह पहली अनिवार्यता है। झूठे लोग कदापि मनुष्य और समाज का निर्माण नहीं कर सकते। अमेध्य कभी मेध्य को उत्पन्न नहीं कर सकते। आर्यो! इस पर ध्यान दो। तुम उस ऋषि के अनुयायी हो जो सत्य का दृढ़व्रती था और जिसने सत्य के लिए ही प्राण दे दिए। सत्य शब्द का प्रयोग और उसका आग्रह महर्षि दयानन्द के अतिरिक्त इतना अधिक बलपूर्वक अन्य किसी ने नहीं किया।

संस्कारों का सम्पादन शिक्षा और औषधियों के द्वारा होता है। महर्षि दयानन्द ने संस्कार विधि में लिखा है – 'जिसे करके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं। इसलिय संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अति उचित है।' अतः

संस्कार करणे क्रियताम् उद्यमो बुधैः।
शिक्षया औषधिभिर्नित्यम् सर्वथा सुखवर्धनः।।

किसलिए करें ? कहते हैं – '**शरीरात्म विशुद्धये**'। शरीर और आत्मा की विशेष शुद्धि के लिए करें।

अतः मनुष्य का निर्माण करने वाले शिक्षक और चिकित्सक होने चाहिए। अब शिक्षा की चर्चा की जाय, जो मनुष्य निर्माण का प्रमुख और अनिवार्य आवश्यक तत्व है। इसीलिए महर्षि दयानन्द ने शिक्षा से ही अपनी क्रान्ति का प्रारम्भ किया। देखें सत्यार्थ प्रकाश ग्रंथ का दूसरा और तीसरा समुल्लास। उन्होंने कहा सब के लिए शिक्षा हो, यह सबके लिए अनिवार्य है। वे लिखते हैं – 'जब सब वर्णों में विद्या सुशिक्षा होती है तब कोई भी पाखण्ड रूप अधर्मयुक्त मिथ्या व्यवहार को नहीं चला सकता'।

'इसलिए सब वर्णों के स्त्री पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार आवश्य होना चाहिए'।

अपितु– 'यही माता–पिता का कर्तव्यकर्म, परमधर्म और कीर्ति का काम है जो अपनी संतानों को तन, मन और धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना'। 'इसलिये आठ वर्ष के हों तभी लड़कों को लड़कों की और लड़कियों का लड़कियों की शाला में भेज देवें'।

'इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सकें। पाठशाला में अवश्य भेज देवें। जो न भेजे वह दण्डनीय हो'।

और ध्यान रखें –'जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों उनसे शिक्षा न दिलावें, किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं'।

आर्यो! सरकारी स्कूलों में दुर्व्यसनग्रस्त, चरित्रहीन अथवा आरक्षण के कृपा पात्र मूर्ख अध्यापक, शिक्षक लग रहे हैं और आपने कामी, क्रोधी, लोभी लोगों को गुरुकुलों का दायित्व सौंप रखा है, जो चरित्रहीनता के कीर्तिमान बनाने में लग रहे हैं और आप आशा करते हैं कि वहाँ से कपिल, कणाद, पाणिनि, पतञ्जलि और दयानन्दों का निर्माण होगा। महापुरुष निकलेंगे।

आचार्यः ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणं इच्छति

– **वेदप्रिय शास्त्री**

पश्चिमी व वामपंथी इतिहासकारों की दृष्टि में आर्य और द्रविड़

– अखिलेश आर्येन्दु

आर्य और द्रविड़ को लेकर ईसाई पादरियों द्वारा जाति, भाषा, सभ्यता, संस्कृति, क्षेत्र और धर्म के आधार पर काल्पनिक विभेद को विश्व इतिहास में सत्य साबित करने के लिए पिछले दो सौ वर्षों के अन्तराल में एक षड्यंत्र के तहत अभियान चलाया गया। भारत में ब्रिटिश सत्ता जब तक कायम रही तब तक भारतीय समाज को कई स्तरों पर ईसाई पादरियों ने 'फूट डालो और राज्य करो' नीति के तहत विभाजित करने के कुत्सित प्रयास किए। जिसका साथ ब्रिटिश सत्ता और विदेशी इतिहासकारों ने दिया जिसमें काफी हद तक वे सफल भी रहे। उदाहरण के लिए द्रविड़ शब्द की कल्पना 1856 में काल्डवेल नामक ईसाई पादरी ने 'Comparative Philology of the Dravadian or South Indian Languages' नामक पुस्तक में किया। इस पुस्तक से पहली बार द्रविड़ शब्द गढ़कर, इस शरारत का सूत्रपात किया गया। बाद में यह शब्द दक्षिण की भाषा, जाति और वहाँ के लोगों के लिए प्रचलित हो गया, जो बाद में रूढ़ हो गया। जब की एक अन्य विदेशी विद्वान और भाषा शास्त्री जार्ज ग्रीयरसन ने इसे (द्रविड़ शब्द) को संस्कृत शब्द 'द्रमिल' या 'दमिल' का बिगड़ा रूप बताया है और केवल तामिल के लिए प्रयुक्त होना बताया है। पादरियों का षड्यंत्र जारी था। षड्यंत्र के तहत एक नई जाति 'द्रविड़' भी खड़ी की गई। इतिहास का यह दिलचस्प घटनाक्रम यहीं नहीं रुका बल्कि जब काल्पनिक भाषा और जाति पादरियों द्वारा गढ़ लिये गये तो इसे सिद्ध करने के लिए कुछ विदेशी विद्वानों, इतिहासकारों और भाषा शास्त्रियों को इसकी पुष्टि के लिए खड़ा किया गया, लेकिन कुछ ऐसे भाषाशास्त्री भी थे जो इस षड्यंत्र को समझे और इसका गहन विश्लेषण किये। उन विश्लेषणों में इस षड़यंत्र का विरोध ही नहीं किया गया बल्कि इसे मिथ्या भी सिद्ध किया गया। सर जार्ज कैम्पबेल जो कि एक नृवैज्ञानिक थे ने अपने विश्लेषण में कहा, "नृवंशशास्त्र के आधार पर उत्तर और दक्षिण के समाज में कोई विशेष भेद नहीं है।...द्रविड़ नाम की कोई जाति नहीं है। निस्सन्देह दक्षिण भारत के लोग शारीरिक गठन, रीति–रिवाज और प्रचार–व्यवहार में केवल एक आर्यसमाज है।" आर्य और द्रविड़, मूलनिवासी और विदेशी आक्रांता जैसी काल्पनिक बातें इतिहास में पढ़ाई जाती रही हैं और आज भी नई पीढ़ी को पढ़ाया जा रहा है। इसी तरह मार्क्सवादी इतिहासकारों ने अंग्रेजी इतिहास–दृष्टि को अपनी दृष्टि बनाया और उसे सबसे प्रमाणिक सिद्ध करने की पुरजोर कोशिशें कीं, जिसमें वे सफल रहे। यही कारण है, आज की नई पीढ़ी अपने इतिहास, संस्कृति, सभ्यता, भाषा और धर्म को लेकर भ्रमित और कुंठित है। इस अंक से 'आर्य और द्रविड़' पर एक विवेचनात्मक, तथ्यात्मक और नृवैज्ञानिक श्रृखंला प्रारम्भ की जा रही है। पाठकगण, आप ने इस विषय में जो भी कुछ जाना–समझा, पढ़ा–लिखा और विचार किया है, उसे इस श्रृंखला को पढ़ते समय आग्रह–दुराग्रह से दूर हटकर देखने की कोशिश कीजिएगा। आशा है इतिहास के इस सबसे बड़े षड्यंत्र को समझने में आप अपनी बुद्धि का सम्यक् प्रयोग करेंगे।

– समन्वय सम्पादक

अखण्ड भारत में अंग्रेजों के आने के पूर्व आर्यावर्त की धरती पर फ्रांसीसी, डच, मंगोल, तुर्क, अरबी मुसलमान, इरानी, इराकी आदि जैसी अनेक जातियाँ भारत की धरती पर राज्य कर चुकी थीं। अनेक मुसलमान वंश, पारसी वंश और विदेशी तुर्कों के वंश के बादशाह राज्य कर चुके थे। ईसाई और मुसलमानों के उदय के पूर्व आर्यावर्त की धरती पर वैदिक धर्म को मानने वाले आर्यों के अनेक वंश सकल धरा पर राज्य कर चुके थे। कुछ पुराणों की रचना हो चुकी थी और कुछ लिखे जा रहे थे। जैन, बौद्ध के सम्प्रदायों के अतिरिक्त हिन्दुओं के कुछ सम्प्रदायों–शाक्त, वैष्णव, शैव आदि सम्प्रदाय पुराणों के मत के अनुसार भारतीय समाज पर अपना प्रभाव डाल रहे थे। जैन व बौद्धों के मतों का भी प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ रहा था। माना यह भी जाता है कि जैनियों के द्वारा रचित पुराणों की रचना हो चुकी थी। इसी तरह बुद्ध के धम्मपद और

उनके उपदेशों को उनके शिष्यों द्वारा संग्रहित किए गए ग्रंथ– त्रिपिटक, विनय पटक, सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक जो पालि भाषा में थे का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ रहा था। जिसका प्रभाव सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, भाषाई और राजनीतिक क्षत्रों में गहराई से पड़ रहा था। कहा जाता है, जैन और बौद्ध ग्रंथों के प्रभाव से हिंदू समाज को बचाने के लिए हिंदू दर्शन के झंडाबरदारों ने पुराणों की रचना की। समाज में प्रचलित वैदिक गुण–कर्म–स्वभाव पर आधारित वर्ण–व्यवस्था धीरे–धीरे जाति–व्यवस्था में परिवर्तित हो रही थी। पौराणिक–सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का प्रभाव भारतीयों पर कई रूपों में पड़ रहा था। वेदों का पठन–पाठन बन्द हो चुका था और पुराणों पर आधारित कर्मकाण्ड जो अंधविश्वास, पाखण्ड, कुरीतियों और अमानवीय प्रथाओं से पूरित थे से हिन्दू समाज दिगभ्रमित और रूढ़िवाद में फंस चुका था। इतिहास में जो पढ़ाया जाता है वह संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में लिखे विविध प्रकार के ग्रंथों में वर्णित इतिहास या कल्पना के आधार पर है। अंग्रेज इतिहासकार और मार्क्सवादी इतिहासकारों ने एक दुराग्रह और नीति के आधार पर जो इतिहास लिखा वह इतिहास के रूप में अंग्रेजी कुनीति का दस्तावेज अधिक है। यही कारण है कि जब हम तथाकथित इतिहास पढ़ते हैं तो लगता है, भारतीय समाज, भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में अत्यंत पिछड़े हुए थे जिसे अंग्रेजों ने सशक्त बनाने के कार्य किए। इसी क्रम में यह भी पढ़ाया जाता है कि भारत के मूल निवासी द्रविण या शूद्र थे उन्हें आर्यों ने परास्त करके यहाँ के प्रत्येक क्षेत्र में अपना वर्चस्व कायम किया और उनके साथ गुलामों जैसा व्यवहार किया। इसी तरह ईसाई इतिहासकार पादरी जो दुराग्रह और स्वार्थ के वसीभूत थे ने वेदों के सम्बन्ध में जो प्रचारित–प्रसारित किए, वह भी अत्यंत भ्रामक, प्रवंचनापूर्ण और सत्य से इतर है। इसी तरह, भाषा के स्तर पर भी अंग्रेज इतिहासकारों ने दिगभ्रमित किया। अंग्रेज इतिहासकारों ने भारतीय भाषाओं को मुख्यतः दो भाषाओं–आर्य और द्रविण भाषाओं में विभक्त किया। दक्षिण की मुख्य भाषाओं–तेलगू, कन्नड़, मलयालम और तमिल हैं। सामूहिक रूप से इन्हीं को द्रविण भाषा के अन्तर्गत रखा गया है। राजनीतिक स्वार्थ के वसीभूत होकर इतिहासकारों और लेखकों ने जोर–शोर से प्रचारित–प्रसारित किया कि संस्कृत जो आर्यों की भाषा है से द्रविण भाषा का कोई सम्बन्ध नहीं है। अंग्रेजों ने भारतीयों को ःफूट डालो और राज्य करो' की नीति के तहत तथाकथित द्रविण भाषाओं को आर्यों की भाषाओं से पूरी तरह भिन्न सिद्ध करने के लिए झूठे तर्क और प्रमाण देने के कुत्सित प्रयास किए, जिसे भारतीय मार्क्सवादी इतिहासकारों ने बिना किसी विवेचना या विश्लेषण के जस का तस स्वीकार किया और अंग्रेजी इतिहास को ही प्रमाणिक मान लिया। जब कि भारतीय और विदेशी भाषा शास्त्रियों ने अपने विश्लेषण के बाद यह पाया कि संस्कृत के 75 प्रतिशत शब्द बंगला और तेलगू में हैं और 90 प्रतिशत शब्द मलयालम में हैं। इसी तरह कन्नड़ में 80 प्रतिशत और तमिल में 50 प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। जहाँ तक सांस्कृतिक और सामाजिक समानता का प्रश्न है, यह भी सर्वेक्षणों से वर्षों पूर्व हल कर लिया गया है।

ध्यान देने की बात यह है कि उत्तर और दक्षिण के अधिकांश त्योहारों, पर्वों, उत्सवों, संस्कारों, कर्मकाण्डों और जीवन शैली में काफी समानता है। इसके अतिरिक्त स्वभाव, विचार, मान्यताओं और धारणाओं में किसी न किसी रूप में समानता दिखाई पड़ती है–वह चाहे धार्मिक हो या आध्यात्मिक, दार्शनिक हो या भौतिक।

मैंने भाषा, संस्कृति, सभ्यता, धर्म, अध्यात्म और कला पर विवेचनात्मक अध्ययन किया और पाया है कि उत्तर–दक्षिण या पूर्व–पश्चिम भारत के प्रत्येक वर्ग, जाति, सम्प्रदाय और समूह में अनेक बातों की गजब की समानता है। आर्य और द्रविण या ब्राह्मण और दलित का जातिगत भेदभाव सामाजिक रूप से आज जिस रूप में है, वह पिछले दो हजार वर्षों में अज्ञानता और अशिक्षा के कारण बढ़ता गया जिसका लाभ मुसलमान और ब्रिटिश शासन में शासकों ने मनमाने ढंग से उठाया। मनुस्मृति और अन्य स्मृतियों में मिलावट या प्रक्षेप पिछले दो हजार वर्षों में किये गए। उन प्रक्षेपों को लेकर ही मनुस्मृति और अन्य वैदिक ग्रंथों के विरोध में राजनीति के शूरमा अपनी रोटियाँ सेकते रहते हैं, जबकि महर्षि मनु के वचनों में जिस वर्ण–व्यवस्था और उसके कार्य–व्यवहार का वर्णन किये गए हैं वे सर्वथा मानवीय, मानव मूल्य परक और

सर्वहितकारी हैं। इस सत्य और न्याय परक वर्णन को निष्पक्ष और तर्क के साथ स्वाध्याय करने और चिन्तन करने की आवश्यकता है। सर्वण–असवर्ण की बात ही पूरी तरह गलत और भ्रमाक है। सवर्ण का अर्थ न तो द्विज जाति परक है और न तो असवर्ण का अर्थ द्विज जाति इतर जाति ही। ये सारे शब्द भारतीय समाज के परतन्त्रता में हिंदू समाज को विघटित करने के मद्देनजर प्रचलित किए गए। आश्चर्य इस बात की भी होती है कि आज का पढ़ा लिखा वर्ग भी इस अज्ञानता को स्वीकृति देता द्रष्टव्य होता है। संस्कृत भाषा का शब्द 'सवर्ण' का अर्थ उसी वर्ण का होता है। इसके अनुसार ब्राह्मण ब्राह्मण का सवर्ण होता है और दलित दलित का। इसी तरह असवर्ण का अर्थ जो उस वर्ण का न हो न कि द्विज इतर जाति या वर्ण।

पश्चिमी इतिहासकारों द्वारा इतिहास की पुस्तकों में जो आर्य–द्रविण या ब्राह्मण–शूद्र को मनमाने ढंग से विश्लेषण किया उसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों के जाने के बाद पिछले सत्तर वर्षों में कांग्रेसी शासन में पले–बढ़े वामपंथी इतिहासकारों ने पश्चिमी इतिहासकारों की प्रत्येक बात को आँख मूंदकर मान ही नहीं लिया बल्कि उसके लिए अपने निरर्थक तर्क भी गढ़ लिए। आज सत्तर वर्ष के अन्तराल में इतिहास की पुस्तक में लिखी भारत के मूल निवासी और तथाकथित आर्य आक्रणकारियों के किस्से को नई पीढ़ी पढ़कर यह समझती है कि दलित
वर्ग ही भारत का मूल निवासी है और बाकी सवर्ण जातियां आक्रमणकारी आर्यों की सन्तानें हैं। पश्चिमी ईसाई इतिहासकारों के इतिहास के इस भयंकर षड्यंत्र को समझने की आवश्यकता है। जिससे सत्य और मिथ्या को समझा जा सके और पश्चिमी षड्यंत्र को आगे बढ़ने से रोका जा सके। *******

अगले अंक में इसके आगे की चर्चा करूंगा। –

परिषद् की वेबसाइट को आप www.aryalekhakparishad.com पर जा कर अवलोकन कर सकते हैं। यह पत्रिका भी इस वेबसाइट पर डाल दी जाती है अतः पत्रिका को पड़ने के लिए साइट के लिंक https://aryalekahkparishad.com/आर्ष-क्रान्ति-पत्रिका पर जाएं।

साथी कहो! कहाँ से लाऊँ ?

सोए युग की आँख खोलकर,
मादकता में जहर घोल दे।
दानवीय कारा में बन्दी,
मानवता के पाश खोल दे।।
ऐसा गीत कहाँ से लाऊँ ।१।
साथी कहो! कहाँ से लाऊँ ?

जो गिरते को सम्हाल लेवे,
गिरे हुए को पुनः उठा ले।
मुरझाए को विकसित कर दे,
ठुकराए को गले लगा ले।।
ऐसा मीत कहाँ से लाऊँ ।२।
साथी कहो! कहाँ से लाऊँ ?

जो महलों से स्नेह बिन्दु को,
पीकर अपनी ज्योति जगा दे।
कष्टों के कुहरे से कलुषित,
झोपड़ियों का तिमिर भगा दे,
ऐसा दीप कहाँ से लाऊँ ।३।
साथी कहो! कहाँ से लाऊँ ?

तूफानों लहरों की टक्कर,
खा–खा कर जो हुआ हो खुर्दर,
स्निग्ध सिंधु में जो सोता हो
और उदर में भी मुक्ता हो।
ऐसा सीप कहाँ से लाऊँ ।४।
साथी कहो! कहाँ से लाऊँ ?

– वेदप्रिय शास्त्री
सीताबाड़ी, केलवाड़ा
राजस्थान

INDIA WITHOUT SCHOLAR BRAHMINS

– Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

1. आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो बह्मवर्चसी जायताम्। (यजुर्वेद 22.22)
(दयानन्दभाष्य :– ब्राह्मणो वेदेश्वरवित् ब्रह्मवर्चसी वेदविद्याप्रदिप्तः)

2. द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ।
शब्दब्रह्मणी निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति ।।

3. ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। (यजुर्वेद 31.11)

4. अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा
दानं प्रतिग्रहश्चौव ब्राह्मणानामकल्पयत्। (मनुस्मृति 1.88)

5. शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ।। (गीता : 18.42)

6. मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ।। (हितोपदेशः 1.14)

7. नावास्तुनो वस्तुसिद्धिः। (संख्यदर्शन : 1.43)

8. अपां संयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम्। (वैशेषिकदर्शन : 523)

India's orignal culture is the Vedic Culture and not the L.C.M of different civilizations or customs. Vedic Culture is a pure and complete life system of both man and society, based on the Vedas. The Vedas are four in number, namely, Rigveda, Yajurveda, Samaveda and Atharvaveda, comprising 20379 hymns in all. The word 'Veda' means 'knowledge': the knowledge bestowed by God upon all human beings of all places at all times.

There is a class of persons and families who are scholars of Vedas and worshippers of one omnipresent God. Their heart is illuminated with the light of Vedic knowledge, and hence their name comes out to be Brahmin. (1)

Brahm is the natural name of two entities, namely, Shabda-Brahm or Veda

and Para-Brahm or God.The attainment of the former leads to the attainment of the latter. A true Brahmin is he who attains both of them. (2)

The ancient Indian seers found that the people belong to four categories on the basis of their qualities and business. These categories were named four Varnas. The persons having deep love for knowledge were known as Brahmins. Those choosing warfare as their business were known as Kshatriyas. The people choosing agriculture,animal husbandry and trade as their job were known as Vaishyas. All others were called Shudras, and the duty of their varna was to help and assist the first three varnas.(3)

This classification was not a division of society. It was rather a categorisation of business and jobs in the interest of a self-sufficient and complete society. Since knowledge and wisdom combined into one, is the treasure of all treasures, so the Brahmins were given the highest place in Vedic society. The Kshatriyas, being the saviours of lives,land and society, were given the second highest place of respect.If we assume our society to be a human body, the Brahmin varna is like its mouth and the Kshatriyas as the arms.(4)

The Brahmin-varna was never here ditary. It was rather a hard-earned category. Manu, the law-giver, counts the six jobs of a Brahminas are gular study of Vedas, honorary teaching, self-yajna, performing yajna for others, giving donation, and accepting donations.(5)

The Gita preaches that all Brahmins must possess these nine qualities. - (i) Control over one's mind, (ii) Control over all senses, (iii) a non-failing conduct of truth and justice, (iv) Purity of body, speech and soul, (v) non-consideration of joy or sorrow, profit or loss, and fame or infame on personal accounts, (vi) a plane and simple living, (vii) Wisdom of Vedas, (viii) Knowledge and application of sciences, and (ix) an unwavering devotion to God. (6)

Our courtrooms all over the world, are flooded with disputes overe go, woman and wealth.The schools, police-stations, reformatories and jails have failed to wipe out crime from the face of humanity. On the golden side of the world society, the Indian scholar Brahmin, holding the key to peace in his hand, announces that:

(a) Each and every woman in the world is as pious to me as my real mother.
(b) Any amount of anyone's gold is equal to a particle of dust to me.
(c) My soul is no different from any other soul in the Universe. (7)

The human soul does know the true and false of things. The four

Vedas have also been emitting the true knowledge of God and the world. But the unsound ideologies are continuously spreading confusion and non-sense. The world misconceives Vedic Philosophy to be a spiritual monism which means that God is true and world is false. But a great scholar Brahmin (Rishi Kapil) says that a physical substance cannot come into existence without a physical cause.(8)

The present generations hold the view that Newton discovered the law of gravitational force in the year 1666. We Indians are proud to claim that the Vaisheslik Darshan discussed the force of gravitation even before the Buddha period. It is agreed that Newton made his announcement without consulting the Darshan. But it was the great Scholar Brahmin of the Darshan (Rishi Kanaad) who was first to announce that the rain-water falls down to earth because of the gravitational force. (9)

In India today, there are persons of knowledge, worship and service. But they are three different persons. 'Scholar Brahmin' means the person possessing all the three qualities. India needs such persons in thousands.

Subhash Chandra Bose Famous Quotes

- One Individual may die for an idea, but that idea will after his deadth, incarnate itself in thousand lives.
- No real change is histroy has ever been achieved by discussions.
- It is our duty to pay for our libert with our own blood. The freedom that we shall win through our sacrifice and exertions, we shall be able to preserve with our own strength.
- Men, Money and Materials cannot by themselves bring victroy or freedom. We must have the motive-power that will inspire us to brave deeds and herolic exploits.
- We should have but one desire today the desire to die so that India may live.

धर्म और सम्प्रदाय

– डॉ. सीतेश आलोक

पुरुषोत्तम नागेश ओक सृजित पुस्तक 'वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास' में जिन ऐतिहासिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रवृतियों, इतिहासपरक प्रमाणों और अध्यात्म से ताल्लुक रखने वाले सत्याधारित विषयों का वर्णन किया गया है उसे एक बार निष्पक्ष और पवित्र मन से अवश्य पढ़ना चाहिए। अनेक प्रश्नों का समाधान उक्त पुस्तक में किया गया है। वर्षों से 'हिन्दू' शब्द, हिन्दू विचार या धर्म को लेकर विचारक मनीषी और गवेषक विभिन्न प्रकार के तर्काधारित, काल्पनिक और आग्रह–दुराग्रह से युक्त विचार व्यक्त करते रहे हैं। आज तक एक मत से कोई सर्वमान्य विचार नहीं स्थिर हो पाया कि जिसे सभी मनीषी मान लेते। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं लगाया जाना चाहिए कि सत्याधारित, प्रमाण–युक्त और तथ्यपरक (भाषा, इतिहास और नृशास्त्र से सम्बन्धित) शोध किए ही नहीं गए। वैदिक सम्पत्ति, वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास, संस्कृति के चार अध्याय जैसी अनेक पुस्तकों में 'हिन्दू' शब्द पर गहन विश्लेषण किया गया है। इसके अतिरिक्त स्वामी विद्यानन्द सरस्वती, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, महापण्डित राहुलजी, राम विलास शर्मा व आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे अनेक आचार्यों ने हिन्दू शब्द पर गहन गवेषणा की है। आधुनिक गवेषकों में डॉ. सीतेश आलोक ने अपनी गवेषणा में अनेक 'प्रश्नमूलक' व 'द्वंद्वात्मक' शब्दासें और विषयों की गवेषणा की है। डॉ. आलोक की पुस्तक 'चलती चक्की' में ऐसे अनेक विषयों के गवेषणात्मक निबंध संग्रहित हैं। प्रस्तुत लेख डॉ. आलोक ने धर्म और सम्प्रदाय जैसे अति जटिल विषय की अत्यंत गहराई और तथ्य परक विवेचना की है। लेख पढ़ते समय पाठक यदि आग्रह–दुराग्रह से ऊपर उठकर अपनी दृष्टि बनाए रखेंगे तो निश्चित ही यह लेख धर्म और सम्प्रदाय पर उठने वाली अनेक जिज्ञासाओं और प्रश्नों का समाधान करेगा।

– समन्वय सम्पादक

हिन्दू धर्म क्या होता है? यह एक ऐसा प्रश्न है जो अधिकांश लोगों की समझ से परे है। मात्र अहिन्दू ही नहीं, अधिकांश हिन्दू भी सम्भवतः इस विषय में स्पष्ट नहीं हैं। कारण सम्भवतः यह है कि, संसार में प्रचलित सम्प्रदायों से भिन्न, धर्म एक ऐसी मौलिक एवं सूक्ष्म अवधारण है जिसे असानी से शब्दों में परिभाषित नहीं किया जा सकता।

सबसे पहले तो यही जान लेना आवश्यक है कि 'हिन्दू' कोई भारतीय शब्द नहीं है। सातवीं शताब्दी के आसपास, अनजाने ही, कुछ अरब–वासियों ने अपने उच्चारण–दोष के कारण हिन्दू शब्द का प्रयोग किया था। अपनी वर्णमाला में, वे 'स' को भी 'ह' कहते थे। अतः उन्होंने भारत की पश्चिमी सीमा के निकट बहने वाली नदी को हिन्दु नदी और उसके पार, पूर्व दिशा में बसने वाले लोगों को 'हिन्दू' नाम दे रखा था।

कालान्तर में, इसलाम के आगमन और विशेषतया 712 ई. में इस अविजित भारत की धरती पर मुहम्मद बिन–क़ासिम के आक्रमण के बाद, धीरे–धीरे इस शब्द ने व्यापक रूप ले लिया, यहाँ तक कि भारत में बसे लोग भी अपने आप को हिन्दू कहने लगे। इससे पहले भारतीय उपमहाद्वीप में बसे इन लोगों का कोई सम्प्रदाय–सूचक नाम नहीं था। वे अपने क्षेत्रीय रीति–रिवाज मानने के लिए तथा अपने स्थानीय देवी–देवताओं की आराधना के लिए स्वतंत्र थे और, आंचलिक तथा क्षेत्रीय विभिन्नताओं के बावजूद, एक ऐसी सांस्कृतिक डोर तथा सर्व–स्वीकृत आचार संहिता से बँधे थे जिसे वे धर्म कहते थे।

इस प्रकार हिन्दू, भारतीय उपमहाद्वीप में प्रचलित अनेकानेक पंथों एवं सम्प्रदायों का सामूहिक नाम है, जिसे बहुधा सम्प्रदायों का महासंघ कहा गया है। सम्भवतः, यदि सूक्ष्म वस्तुपरक दृष्टि से देखा जाए तो, इन में प्रचलित पंथों को पूरी तरह सम्प्रदाय अथवा मज़हब भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनमें, अपने देवी–देवता के अतिरिक्त, अन्य किसी इष्ट देव के पूजन–सम्बन्धी कोई बंधन अथवा वर्जना नहीं है... और न यह आग्रह अथवा आदेश ही है कि वे अपने पंथ द्वारा निर्दिष्ट देवी–देवता का पूजन ही करें, अथवा निर्दिष्ट रीति–रिवाज का अक्षरशः पालन करें।

धर्म बनाम सम्प्रदाय या मज़हब

सम्भव है कि यह बड़ी विचित्र बात लगे, विशेषतया प्रचलित शब्दावली के संदर्भ में, किन्तु वास्तविकता यही है कि धर्म तथा रिलीजन नितान्त भिन्न अवधारणाएँ हैं। यह भी सम्भव है कि हिन्दुओं के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों, मज़हबों अथवा रिलीजन में बँटे अधिकांश लोग यह समझ ही न पाएँ कि धर्म–जैसी भी कोई अवधरणा हो सकती है जो मज़हबी सोच से कहीं उदार, मानवीय एवं समग्र है। कारण यह है कि जहाँ भारत के विचारकों एवं चिन्तकों ने विश्व–शान्ति के मंत्र जप कर उन्नत मानवीय जीवन–मूल्यों को जन्म दिया, वहीं संसार के विभिन्न भागों में अपने लोगों को कट्टर सम्प्रदायों के रूप में संगठित किया और उन्हें शक्तिशाली क्षेत्रीय मज़हब के रूप में स्थापित किया। इन सम्प्रदायों–मज़हबों में मूलरूप से ईसाई तथा इसलाम हैं जिनको विश्व की लगभग दो–तिहाई जनसंख्या में मान्यता प्राप्त है – कहीं तो इनकी शक्ति के प्रभाव में अन्य लोगों द्वारा स्वेच्छा से स्वीकृति पाकर और कहीं बल–प्रयोग द्वारा उन्हें अपने में मिलाकर। परिभाषाओं में न उलझें तो, मूल रूप से, विश्व के सभी मज़हब और सम्प्रदाय, जिन्हें साधारणतया '*सिमेटिक रिलीजन*' कहा जाता है, अपने इष्टदेव के नाम, उसकी उपासना की पद्यति और रीति–रिवाज–सम्बन्धी नियमों को महत्त्व देते हैं। इसके विपरीत भारतीय धर्म की अवधारणा इन सभी विषयों में उदार है और मानव–मात्र के नैतिक तथा चरित्रिक विकास एवं व्यवहार पर बल देती है।

और यही धर्म की विशेषता है जो उसे मज़हबों तथा सम्प्रदायों से अलग रूप प्रदान करती है। हिन्दू भी एक ही परमात्मा की सत्ता पर विश्वास करते हैं, जिसे वे सर्वव्यापी तथा सर्वशक्तिमान मानते हैं। किन्तु लोगों को इस सम्बन्ध में स्वतंत्रता है कि वे परमात्मा को किस नाम से अथवा किस रूप में पूजें। प्रमुख धर्म–शास्त्रों में उस एक सर्वशक्तिमान की मूलरूप से तीन भूमिकाओं में कल्पना की गई है – विश्व–निर्माण करने वाले ब्रह्मा के रूप में, जीवन–काल में सृष्टि के पालनहार विष्णु के रूप में और परा–जीवन के नियंता शिव के रूप में (जिन्हें, भ्रमवश, कहीं संहारक भी कहा जाता है)।

इस प्रकार, धर्म, संकुचित महज़बी सोच से नितान्त भिन्न है। धर्म एक अत्यंत मानवीय एवं सूक्ष्म अवधारणा है। यह तथ्य सम्भवतः अत्यंत आवश्यक एवं आधारभूत है कि धर्म, संसार के अन्य भागों में मान्य एवं प्रचलित सम्प्रदयों, रिलिजनों, मज़हबों आदि की भाँति, अथवा उनके समतुल्य, कोई सत्ता नहीं है – जैसा कि साधारणतया कहा अथवा समझा जाता है। इस सम्बन्ध में, यह भयंकर भूल तब हुई जब, ब्रिटिश शासनकाल में, धर्म का अंग्रेज़ी में अनुवाद करने अथवा उसका समानार्थक शब्द ढूँढ़ने के प्रयास में, तत्कालीन राजनीतिज्ञों एवं भाषाविदों की दृष्टि अंग्रेज़ी के जाने–पहचाने शब्द '*रिलिजन* ' पर जा टिकी। किन्तु वास्तविकता यही है कि वे धर्म की निहित मौलिक भावना को नहीं समझ पाए, जिसे इस उप–महाद्वीप के पूर्वकालीन चिन्तकों एवं मनीषियों ने रेखांकित किया था।

जहाँ सभी *रिलिजन*, सम्प्रदाय आदि आस्था एवं पूजा–पद्यति की विधियाँ हैं, धर्म एक उदार जीवन–शैली की अवधारणा है। साम्प्रदायिक एवं मज़हबी सोच से परे, धर्म इस बात पर बल देता है कि मानव का आचरण नैतिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से ऐसा शुद्ध एवं उदार हो कि वह मात्र अन्य मनुष्यों के साथ ही नहीं, जीव–जन्तु, वन–सम्पदा, नदी, पर्वत आदि सम्पूर्ण पर्यावरण के बीच सुख एवं शान्ति के साथ रह सके। बिना किसी अनिवार्यता का उल्लेख किए, धर्म की अवधारणा – धैर्य, क्षमा, विद्या, सत्य, वैचारिक एवं व्यावहारिक शुद्धता, संयम, चोरी न करना जैसे नैतिक जीवन–मूल्यों को रेखांकित करती है जो सुखमय सह–अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं। धर्म प्रेरणा देता है कि लोग ऐसे उदार एवं उन्नत जीवन–मूल्यों को अपनाएँ - पूरी निष्ठा एवं लगन के साथ। धर्म की अपेक्षा मात्र यह है कि व्यक्ति को एक अच्छा मानव बनना चाहिए। ऐसा कहा जा सकता है कि ये जीवन–मूल्य हर देश एवं काल में व्यवहार के योग्य हैं। यही कारण है कि हिन्दू धर्म को बहुधा 'सनातन धर्म' कहा जाता है।

यही कारण है कि हिन्दू कहीं शिव तो कहीं विष्णु, कहीं राम अथवा कृष्ण तो कहीं काली, दुर्गा अथवा गणेश की पूजा करता मिलता है। यही नहीं, हिन्दू इस

बात के लिए भी स्वतंत्र है कि वह किसी भी देवी अथवा देवता की पूजा न करे, किसी पत्थर अथवा पेड़ को पूजे... या किसी निराकार ब्रह्म की उपासना करे। यह भी नहीं, हिन्दू यदि अन्य किसी में श्रद्धा हो तो उसे भी पूजने को स्वतंत्र हैं। सिद्धान्तरूप में, यदि श्रद्धा हो, तो वे ईसामसीह अथवा मुहम्मद को भी पूजने के लिए स्वतंत्र हैं। उन पर कोई वस्त्र–सम्बन्धी बन्धन भी नहीं है – वे चाहे धोती पहनें या पाजामा अथवा पैन्ट, या कफ़नी या किमोनो, या कुछ भी नहीं। वे स्वतंत्र है कि माथे पर त्रिपुंड लगाएँ या तिलक धारण करें, चंदन या भस्म लगाएँ या कुछ भी न लगाएँ। वे चाहे तो बड़े केश रखें, या छोटे रखें या सिर बिल्कुल घुटा दें। चाहे तो दाढ़ी मूछ बढ़ाएँ या बिल्कुल साफ़ कर दें।

धर्मान्तरण – सोचा भी नहीं गया

दूसरों पर अपनी मान्यता बलपूर्वक थोपना तो दूर की बात, हिन्दुओं ने अपने धर्म का कभी प्रचार–प्रसार भी नहीं किया। हिन्दुओं की अन्तर्निहित मान्यता यह रही कि परमात्मा ने जिसे जहाँ भी, जिस परिवेश में, जन्म दिया, वह वहीं ठीक है। व्यक्ति को अपनी जड़ों से जुड़े रहकर, अपने जन्म–जात परिवेश में ही निरन्तर एक अच्छा मानव बनने का प्रयास करते रहना चाहिए। धर्म के अनुसार, सिद्धान्तरूप में, अच्छा मनुष्य कहीं भी और किसी भी सम्प्रदाय का पालन करे – भले ही इसलाम अथवा ईसाई – वह स्तुत्य है, प्रशंसा के योग्य है। उसे हिन्दू बनाने की भला क्या आवश्यकता? और यदि वह अच्छा व्यक्ति नहीं है – उसके कर्म अच्छे नहीं हैं, तो कोई भी धर्मान्तरण उसे अच्छा हिन्दू नहीं बना सकता। तर्क की दृष्टि से, प्रत्येक अच्छा व्यक्ति धर्मी, अर्थात हिन्दू है। इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि वह किन रीति–रिवाजों का पालन करता है और परमात्मा को किस रूप में पूजता है। इसी आधार पर, जब मुग़ल सम्राट अकबर ने, हिन्दू बनने की इच्छा व्यक्त की थी तो तत्कालीन पंडितों ने यह कहकर उसका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था कि हिन्दुओं में धर्मान्तरण का कोई प्रावधान नहीं है। इसी प्रकार, 1312 ई. में कश्मीर से आया तिब्बती राजकुमार रिंचिन शाह भी हिन्दू बनना चाहता था किन्तु उसे भी निराश होना पड़ा।

संक्षेप में, तथ्य यह है कि सभी पंथ, सप्रदाय, मज़हब, रिलिजन आदि किसी समय विशेष पर, अथवा किसी काल खंड में, किसी व्यक्ति अथवा उसके अनुयाइयों द्वारा बनाये गये थे। साधारणतया, सभी मज़हब, सम्प्रदाय आदि के अपने लिखित नियम, रीति–रिवाज आदि होते हैं जिनमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन, बदलते समय की आवश्यकताओं के संदर्भ में भी, अमान्य एवं निषिद्ध होता है। इसके विपरीत, हिन्दू धर्म कभी भी, किसी के द्वारा, 'बनाया' नहीं गया। इस भू–खंड के वासियों ने जब–जब यह पाया कि कोई जीवन–मूल्य सम्पूर्ण मानवता एवं पर्यावरण के संदर्भ में प्राणी–मात्र के हित में है तो उसे भी लोक–व्यवहार में अपनाने योग्य मानकर धर्म की संज्ञा दे दी गई। इस प्रकार हिन्दू धर्म मानवीय व्यवहार को सर्वोपरि मानता है और लोभ, क्रोध, कामुकता, आलस्य, अधैर्य आदि जैसे प्राकृतिक मानवीय दुगुर्णों पर विजय पाने की प्रेरणा देता है। बदले समय के संदर्भ में यदि कभी कोई लोक व्यवहार, अथवा जीवन–मूल्य, मानव समाज के लिए हितकारी प्रतीत हो तो वह भी धर्म का अंग बन जाता है। उदारहण के लिए, आदिकाल में, जब मनुष्य को अन्न की उपज का ज्ञान नहीं था, और जीवन–यापन के लिए प्रकृति से उसे कंद–मूल, फल आदि ही प्राप्त होते थे, मांसाहार पूर्णतया स्वीकृत था... मनुष्य पशु–पक्षियों के आखेट द्वारा भोजन के लिए मांस प्राप्त करता था। किन्तु कालान्तर में, विकास करते हुए जब मनुष्य ने अन्न उपजाया तो धर्म की अवधारण का ध्यान अहिंसा की ओर गया... और स्वीकृत जीवन–मूल्यों में अहिंसा को समुचित स्थान मिला।

यही कारण है कि हिन्दू धर्म को, सिद्धांत रूप में, अन्य मज़हबों, सम्प्रदायों आदि से, कोई विरोध नहीं है – न तो विश्व–स्तर के बड़ी संख्या वाले किताब–आधारित सम्प्रदायों से, अर्थात ईसाई, इसलाम, यहूदी आदि से, जिन्हें '*सिमेटिक रिलिजन*' कहा जाता है – और न भारत में प्रचलित पंथों–सम्प्रदायों से जिनमें बौद्ध, जैन, शैव, सिख आदि के नाम लिए जा सकते हैं। मूलरूप से, हिन्दू धर्म सारी मानवता को दो श्रेणीयों में देखता है – धर्मी तथा अधर्मी। यह विभाजन मात्र इस आधार पर है कि किसका व्यवहार

कितना धर्मानुकूल है... और किसका आचरण धर्म के प्रतिकूल है। निहित भावना यह है कि जिनका धर्म के अनुकूल आचरण है समाज उनका कर्मानुरूप सम्मान करेगा, और जो धर्म का पूर्णरूपेण पालन नहीं करते अथवा धर्म–विरुद्ध मार्ग अपनाते हैं समाज उनके साथ असहयोग करेगा और उनकी निन्दा करेगा। मानव का व्यवहार ही यह निर्धारित करेगा कि वे कितने महान, अथवा साधारण, या निम्न–कोटि के हैं। उदाहरण के रूप में, प्राचीन युग के रावण तथा कंस भी जन्मजात हिन्दू ही थे, यद्यपि तब इस भूखंड–वासियों को यह नाम प्राप्त नहीं हुआ था, किन्तु उनका अनैतिक कर्म देखते हुए ही उन्हें राक्षस तथा अधर्मी जैसी संज्ञा द्वारा समाज की घृणा प्राप्त हुई। मध्य युग के जयचंद और आजकल के आतंकवादी, लूट तथा मिलावट करने वाले और देश–द्रोही जैसे खलनायक, भले ही वे जन्म तथा रीति–रिवाजों का पालन करने वाले हिन्दू ही क्यों न हों, अधर्मी ही कहलाएंगे और प्रशासन द्वारा समुचित दण्ड के लिए अनुशंसित किए जाएंगे। इस प्रकार, मानवीय व्यवहार को सामाजिक समरसता के उद्‌देश्य से, धर्म का आग्रह बस यही है कि मानवीय जीवन–मूल्यों की निरन्तर समीक्षा हो और लोग, धर्म का मार्ग अपनाकर, अपने व्यवहार द्वारा संसार तथा समाज को उन्नत रूप प्रदान करें।

वर्तमान हिन्दू

यह निर्विवाद सत्य है कि आज के अधिकांश हिन्दुओं का व्यवहार धर्म द्वारा निर्दिष्ट महान आदेशों से बिल्कुल भी मेल नहीं खाता। हिन्दू–धर्म की कटु आलोचना करने वालों का अधिकांश तर्क इसी विरोधाभास पर जा ठहरता है। यह सहज ही स्वीकार किया जा सकता है कि हिन्दू धर्म के अनेक कट्‌टर समर्थकों का व्यवहार एवं आचरण भी बहुधा धर्म–विरुद्ध होता है। इसका कारण मूलरूप से यह है कि अधिकांश हिन्दू स्वयं ही यह नहीं जानते कि धर्म वास्तव में क्या है! धर्म का क्या अर्थ है? हिन्दू, सम्प्रदायों–मज़हबों में बँटे अन्य लोगों से, किस प्रकार भिन्न है? अधिकांश हिन्दू मंदिर में जाकर पूजा–पाठ, जाति विभाजन, चोटी, जनेऊ, चंदन आदि जैसे व्यवहार को ही धर्म समझते हैं।

इस स्थिति को मात्र दुर्भाग्यपूर्ण कह लेना पर्याप्त नहीं होगा। मूलरूप से इसका कारण यह है कि भारत पर कई शताब्दियों तक, विदेशी शासन–काल में, हिन्दुओं को कभी यह जानने ही नहीं दिया गया कि वे क्या हैं... और धर्म का अर्थ क्या है! पुस्तकालयों का जलाया जाना तो मात्र एक उदाहरण है, समाज में ज्ञान प्रसारण की आदिकाल से चली आ रही शिक्षा व्यवस्था को निर्ममतापूर्वक ऐसे ध्वस्त किया गया कि नयी पीढ़ियाँ कभी यह जान ही नहीं पाईं कि क्या कर्म है और क्या अकर्म है। इस प्रकार सम्पूर्ण समाज का आत्म–सम्मान एवं आत्म–विश्वास चूर कर के, एक ही झटके में, उनको उनकी गौरवपूर्ण परम्परा से विरत कर दिया गया। दासता ने उन्हे भूख, उद्‌देश्यहीनता, अज्ञानता और हीन–भावना के कुएँ में ढकेल दिया। संक्षेप में, यह सब दासता का दुष्परिणाम है। संक्षेप में, यही वह स्थिति है जिसमें देश–वासियों को डाल कर कोई भी विदेशी सत्ता उन पर राज करने का स्वप्न देखती है।

प्राचीन भारतीय प्रणाली

पहले भारत में जगह–जगह पर गुरुकुल होते थे, जिनमें नयी पीढ़ियों को शास्त्रीय ज्ञान के साथ ही कर्म–अकर्म सम्बन्धी व्यावहारिक शिक्षा भी दी जाती थी। आनेवाली पीढ़ियाँ जीवन की चुनौतियों का सम्मानपूर्वक सामना करते हुए जीवन–यापन की शैली सीखती रहती थी। ये गुरुकुल एक प्रकार के शिक्षा संस्थान होते थे जिनका प्रमुख, एक गुरु, शिष्यों से बिना किसी प्रकार का शुल्क लिए उन्हें शास्त्रीय एवं व्यावहारिक ज्ञान देता था। शासन की ओर से स्थापित न होने के कारण, गुरु अथवा गुरुकुल को प्रशासन की ओर से कोई वेतन अथवा वित्तीय सहायता का सहयोग भी नहीं मिलता था। ऐसी स्थिति में, गुरुकुल के शिष्य घर–घर जाकर समाज से जो कुछ भी माँग कर लाते थे – उसे भिक्षा ही कह लें, उसी से गुरु एवं गुरुकुल का व्यय चलता था। इस प्रकार गुरु तथा उसके आश्रम का उत्तरदायित्व समाज पर रहता था, जिससे कि गुरु चिन्ता–मुक्त होकर शास्त्रों के अध्ययन, व्यक्तिगत मनन–चिन्तन तथा अन्य ज्ञानियों से वैचारिक आदान–प्रदान द्वारा मनोयोग से ज्ञानार्जन तथा शिक्षण का दायित्व निभा सके।

विदेशी शासन–काल में, नागरिकों के दमन के साथ ही देश की शास्त्र–सम्पदा को विनष्ट करने का कार्य भी निरन्तर चलता रहा। पुस्तकालय जलाना तो एक घटना है, जगह–जगह पर गुरुकुल नष्ट किये गये और गुरुओं को ऐसी शिक्षा देने के लिए प्रताड़ित एवं दंडित किया गया जो, उनकी मज़हबी दृष्टि में, पापपूर्ण थी। दूसरी ओर, व्यापक लूट तथा प्रतारणा के परिणाम–स्वरूप समाज इतना आतंकित, निर्धन एवं पीड़ित होता रहा कि वह गुरुओं को प्रश्रय देना तो दूर, अपने बच्चों की शिक्षा–दीक्षा के विषय में सोचने की क्षमता भी खो बैठा। समाज में शिक्षा प्रसार की शताब्दियों पुरानी गुरु– शिष्य प्रणाली पूरी तरह ध्वस्त हो गयी।

लगभग छः शताब्दियों के इसलामी शासन के बाद देश पर ब्रिटिश सत्ता स्थापित हुई। दमन प्रणाली में आंशिक भिन्नता के बावजूद भारतीय समाज का बर्बरतापूर्ण दमन वैसे ही चलता रहा। लोगों के मन में भय, निराशा, हीनता तथा दिशाहीनता के फलस्वरूप समाज निन्तर टूटता रहा। नये शासकों ने जनता का आत्म–विश्वास एवं आत्म–सम्मान तोड़ने का जो एक नया मार्ग अपनाया, वह था अंग्रेज़ी भाषा का प्रचार–प्रसार। कुछ लोगों को काम–चलाऊ अंग्रेज़ी सिखाकर, शासकों ने बाबुओं की एक नयी पौध लगाई। इन बाबुओं को कुछ रुपय तथा छोटे–मोटे पद तथा अधिकार देकर उन्हें अन्य भूखे–नंगे भारतीयों के बीच आदर्श एवं सम्मानित नागरिकों के रूप में खड़ा किया। ये बाबू अन्य भारतीयों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे और, सरकार द्वारा प्राप्त धन तथा अधिकार के कारण, समाज में सम्मान के पात्र बन जाते थे।

यहीं अन्त नहीं हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य के अंतिम दशकों में, देश में वाम–पंथी विचार धारा पाँव पसार रही थी, जिसके पास वर्ग–संघर्ष तथा आर्थिक लाभ के लुभावने नारे थे। भारत के निराश एवं संत्रस्त नागरिकों को आर्थिक लाभ के नारे ने तुरन्त आकर्षित किया। किन्तु मार्क्स की सोच में जो आधारभूत कमीं थी वह थी नैतिक जीवन–मूल्यों का अभाव... वही जो भारतीय जीवन–दर्शन का प्रमुख अंग हैं। फिर भी, पहले से ही टूटते–विखरते भारतीय जन–मानस में एक और दरार पड़ गयी, जिसमें अनैतिकता तथा संस्कारहीनता के बीज पड़ते रहे – जो आज रिश्वतख़ोरी, काला–बाज़ारी, लूट–पाट, सामाजिक विघटन, वर्ग–संघर्ष तथा अन्याय के रूप में सर्वत्र फल–फूल रहे हैं।

मार्क्स को, वास्तव में, नैतिक जीवन–मूल्यों पर आधरित धर्म की अवधारणा का कोई ज्ञान नहीं था। अपनी आर्थिक सुविधाओं पर आधरित सम्प्रदाय–निरपेक्ष सामाजिक संरचना की धुन में, अनजाने ही, उसने एक और संकीर्ण अर्थ–लोलुप सम्प्रदाय को जन्म दिया, जिसमें भारतीय उदार सोच के लिए कोई स्थान नहीं था। उसके समर्थकों ने उसे अपना सर्वेसर्वाः मानते हुए बड़े उत्साह एवं अंध–भक्ति के साथ उसके ध्वज तले संघर्ष प्रारम्भ कर दिया। यह कार्य भारत में सम्भवतः कुछ अधिक ही ज़ोर–शोर के साथ हुआ क्योंकि यहाँ के लोग निराश एवं आर्थिक रूप से विपन्न तो थे ही, विदेशी शासनकाल में अपनी महान सांस्कृतिक परम्परा से भी पूरी तरह कटकर और भी दिशाहीन हो चुके थे।

क्या यह निर्बलता का परिणाम था?

बहुधा यह प्रश्न किया जाता है कि यदि भारतीय विचारधारा तथा संस्कृति इतनी उन्नत एवं विकसित थी तो हिन्दू अपने–आप को विदेशी आक्रमणों से तथा कालान्तर में होने वाले घटना क्रम से अपनी संस्कृति को बचा क्यों नहीं पाए? निःसन्देह, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि हिन्दू विदेशी आक्रमणकारियों से परास्त हुए। यह सच है कि सैनिक दृष्टि से हिन्दू निर्बल थे। किन्तु इस कड़वे सच के पीछे एक और ऐतिहासिक सच्चाई है।

भारत में, ईसा से पाँच शताब्दी पूर्व, गौतम बुद्ध तथा महावीर नाम के दो संतों का जन्म हुआ था। दोनों ने ही ज़ोरदार शब्दों में अहिंसा के सिद्धांत को रेखांकित किया... कि कहीं भी, किसी भी प्रकार की हिंसा न हो। उनके प्रभाव में अनेक शक्तिशाली शासकों ने शब्दशः इस प्रकार अहिंसा का मार्ग अपनाया कि सभी सैना–सम्बन्धी कार्य–कलाप ठप हो गए। अस्त्र–शस्त्रों का उत्पादन बंद कर दिया गया और लोगों के व्यक्तिगत खड्ग, भाले आदि उपेक्षा तथा उपयोग के अभाव में गोदामों में पड़े ज़ंग खाने

लगे। स्थिति यह आ गयी कि घरों में संयोगवश दो बर्तनों की टकराहट को भी अपशकुन माना जाने लगा। समाज के सभी नेता तथा गुरुजन उन्नत जीवन–मूल्यों तथा क्षमा, धैर्य, सहनशीलता, शान्ति तथा विश्व–बन्धुत्व की महत्ता का प्रचार करने लगे।

यह वह समय था जब कि अनेक पड़ोसी देशों के शासक अपना सैन्यबल बढ़ाकर व्यक्तिगत सम्मान, धन–सम्पदा तथा औरतें प्राप्त करने के लिए नई–नई दिशाओं में बढ़ रहे थे। अपना सैन्यबल बढ़ाने के लिए वे नए–नए, घातक एवं प्रभावशाली अस्त्र–शस्त्रों का निर्माण भी कर रहे थे।

एक ऐतिहासिक सत्य यह भी है कि जब–जब भारत में रहने अथवा यहाँ सिर छिपाने के लिए विदेशी आए, विशेषकर पश्चिम की ओर से, तो उनका स्वागत ही किया गया और उन्हें भारत में रहकर अपने रीति–रिवाज का पालन करते रहने के लिए पूरी स्वतंत्रता प्रदान की गई। दसवीं शताब्दी में गुजरात में पारसियों का आगमन, सन् 57 ईसवीं में, केरल में, सीरियन क्रिश्चियन और ईसा से लगभग एक शताब्दी पूर्व, महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र में रोमन शासकों द्वारा प्रताड़ित यहूदियों का पुनर्वास आदि, ऐसे कुछ उदाहरण है।

इसी बीच, भारतवासी हिन्दुओं पर तैमूर लंग, चंगेज़ खाँ जैसे अनेक संगठित लुटेरों ने आक्रमण किया, जो व्यापक लूट–मार कर के अपने देशों को लौट गए। किन्तु, दुर्भाग्यवश, उन घटनाओं से तत्कालीन हिन्दू समाज ने कोई शिक्षा नहीं ग्रहण की। जो कुछ भी धन–जन ही हानि हुई उसे हिन्दुओं ने, दुर्भाग्यपूर्ण अथवा किसी पूर्व जन्म के पापों का दैवी दण्ड मानकर, शान्तिपूर्वक सहन कर लिया। क्षमा की भावना को सर्वोपरि मानते हुए, सभी शत्रुओं एवं आक्रमणकारियों को क्षमा कर के, वे उन्नत मानवीय मूल्यों का गुणगान करते रहे।

दशवीं शताब्दी का अन्त होते–होते, उत्तर–पश्चिम की ओर से भारत पर निरन्तर कुछ ऐसे विदेशियों के आक्रमणों होने लगे जो धन–सम्पत्ति लूटने से कहीं बड़े सपने लेकर आए थे। उनके लिए भारत की नदियाँ भी एक बहुत बड़ा आकर्षण थीं। उनकी योजना थी कि वे इस भूमि को जीत कर इस पर राज करें और अपनी विचारधारा का प्रचार कर के यहाँ के लोगों को अपने नए मज़हब में शामिल करें।

इसी क्रम में, 1192 में, मुहम्मद ग़ौरी का आक्रमण एक और ऐतिहासिक घटना है जिसमें वह वीर राजपूतों से बुरी तरह पराजित हुआ था। किन्तु राजपूत शासक पृथ्वीराज चौहान ने, अपनी मूर्खतावश, उसे क्षमा कर दिया। लज्जित एवं अपमानित होकर ग़ौरी लौट तो गया किन्तु जल्दी ही बहुत बड़ी और बहुत शक्तिशाली सेना लेकर लौटा। इस बार, पृथ्वीराज चौहान को हराकर ग़ौरी ने तुरन्त ही उसकी आँखें निकाल लीं, जिनमें पिछली बार उसने अपने लिए अपमान और उपहास देखा था... और अंत में उसने पृथ्वीराज को मार भी डाला।

बाबर ने अपनी आत्मकथा, बाबरनामा में लिखा है कि राजपूत वैसे तो बड़े शूरवीर योद्धा थे किन्तु सेना बनाकर युद्ध करना नहीं जानते थे। उनकी सेना के पास कोई योजना अथवा तैयारी नहीं होती थी, जब कि वास्तव में किसी भी सेना के लिए नियमित अभ्यास के साथ ही खून बहाने की और मार डालने की मानसिकता भी आवश्यक होती है। इतिहास बताता है कि बाबर ने अपनी तैयार एवं लड़ाकू सेना लेकर आक्रमण किया था – जिसके पास नव–निर्मित बारूद–चालित तोपें भी थीं और, इसके विपरीत, हिन्दुओं के पास 'केसरिया बाना' के अतिरिक्त अपनी रक्षा के लिए ज़ंग लगी तलवारें ही थीं।

इस प्रकार हिन्दू अपनी किसी निर्बलता अथवा अपनी अक्षम सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था के कारण नहीं बल्कि अपने अति–आदर्शवाद के कारण परास्त हुए थे। उस समय, जब कि विश्व की तथा–कथित सभ्याताएँ घातक शस्त्रों की खोज तथा संग्रह द्वारा अपनी सैन्य–शक्ति बढ़ा रही थीं, भारत आदर्शवाद की समाधि में ध्यान–मग्न था – यह कुछ वैसी ही भूल थी जिसके परिणाम–स्वरूप, हाल ही में, तिब्बत को चीन के हाथों विनष्ट होना पड़ा।

आज भी, जब कि भारत आर्थिक विकास की दिशा में कुछ सफलता पा रहा है, देश को भुखमरी, बेरोज़गारी, दुराचार, विघटन, साम्प्रदायिक दुर्भाव, जातिवाद, वर्ग–संघर्ष और सर्वोपरि आतंकवाद जैसी समस्याएँ घेरे हैं। और, बहुमत में होने के नाते,

हिन्दुओं पर इनका सर्वाधिक आर्थिक, सामाजिक एवं मानसिक दुष्प्रभाव भी पड़ रहा है।

दूसरी ओर, कुछ पड़ोसी देशों की कुदृष्टि भारत पर है। कुछ विश्व–स्तर के बहु–संख्यक सम्प्रदायों का एकमेव घोषित लक्ष्य यह है कि कैसे यहाँ के हिन्दू को, धर्म से विमुख कर के, अपने सम्प्रदाय में मिलाया जाए। ये भी कुछ प्रमुख कारण हैं कि देश सन्तोषजनक रूप से विकसित नहीं हो पा रहा है।

इन परिस्थितियों में, हिन्दू विचारधरा तथा मानसिकता को समझना विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हो जाता है। जहाँ एक ओर अन्य सभी पंथों, सम्प्रदायों, मज़हबों आदि के लिए यह समझना हितकर है कि धर्म की अवधरणा उनकी विरोधी अथवा आक्रमक नहीं है, हम सभी के लिए यह जान लेना भी आवश्यक है कि देश की समस्याएँ, आत्म–सम्मान तथा आत्म–विश्वास से परिपूर्ण एवं कटिबद्ध होकर, केवल बहुसंख्यक हिन्दू समाज ही दूर कर सकता है।*******************

दोहे

शीश नवाते देवता, करते जिसका गान ।
संस्कृति भारत देश की, जग भर की पहचान।।

चलो कि चलना जिन्दगी, भले घोर अॅंधियार।
रचे रोज दल पीत पर, ओस नया संसार।।

लपट आसमां तक उठा, खेल मौत से फाग।
गर्म राख है तो कहीं, भीतर होगी आग।।

तेरी मुट्ठी में जहां, पांव तले आकाश।
जरा जगा मन हौसला, काट वक्त के पाश।।

धरा–गगन को नाप तो, भले पंख दो–चार।
कौन उड़ा कितना उड़ा, ले–ले लाख उधार।।

जीना क्या अॅंधियार में, मरना क्यों गुमनाम।
लिखें–लिखें मन–आग से, धरा–गगन पर नाम।।

– भारत भूषण आर्य (नई दिल्ली)

ये नव वर्ष हमें स्वीकार नहीं

– राष्ट्रकवि रामधारीसिंह दिनकर

ये नव वर्ष हमें स्वीकार नहीं, है अपना ये त्यौहार नहीं
है अपनी ये तो रीत नहीं, है अपना ये व्यवहार नहीं

धरा ठिठुरती है सर्दी से
आकाश में कोहरा गहरा है
बाग बाजारों की सरहद पर
सर्द हवा का पहरा है
सूना है प्रकृति का आँगन
कुछ रंग नहीं , उमंग नहीं
हर कोई है घर में दुबका हुआ
नव वर्ष का ये कोई ढंग नहीं
चंद मास अभी इंतजार करो
निज मन में तनिक विचार करो
नये साल नया कुछ हो तो सही
क्यों नकल में सारी अक्ल बही
उल्लास मंद है जन –मन का
आयी है अभी बहार नहीं
ये नव वर्ष हमें स्वीकार नहीं
है अपना ये त्यौहार नहीं
ये धुंध कुहासा छंटने दो
रातों का राज्य सिमटने दो
प्रकृति का रूप निखरने दो
फागुन का रंग बिखरने दो
प्रकृति दुल्हन का रूप धार
जब स्नेह सुधा बरसायेगी
शस्य श्यामला धरती माता
घर –घर खुशहाली लायेगी
तब चैत्र शुक्ल की प्रथम तिथि
नव वर्ष मनाया जायेगा
आर्यावर्त की पुण्य भूमि पर
जय गान सुनाया जायेगा
युक्ति प्रमाण से स्वयंसिद्ध
नव वर्ष हमारा हो प्रसिद्ध
आर्यों की कीर्ति सदा –सदा
नव वर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदा
अनमोल विरासत के धनिकों को
चाहिये कोई उधार नहीं
ये नव वर्ष हमें स्वीकार नहीं

है अपना ये त्यौहार नहीं, है अपनी ये तो रीत नहीं
है अपना ये त्यौहार नहीं

भव्य वैदिक उत्सव, ऋषि मेला एवं आर्य लेखक सम्मेलन

आर्य लेखक परिषद् के तत्वावधान एवं जिला प्रतिनिधि सभा, प्रयाग (उ.प्र.) के सहयोग से

वैदिक दर्शन, साहित्य, संस्कृति एवं धर्म प्रचार शिविर, प्रयाग (कुम्भ मेला 2019)

विषय : स्मारिका प्रकाशन के लिए लेखकों और विज्ञापन दाताओं से अपील

सम्माननीय विज्ञजन,

जैसा की आप सभी जानते हैं प्रयाग में भारतीय संस्कृति, साहित्य और धर्म का संवाहक कुम्भ की बहुत लम्बी परम्परा रही है। कहा जाता है, प्रयाग और अन्य स्थानों पर लगने वाले कुम्भों की परम्परा मानव संस्कृति के साथ प्रारम्भ हुई थी। विश्व में कहीं पर, किसी भी अवसर पर लगने वाले मेलों में सबसे बड़ा मेला प्रयाग का कुम्भ मेला है जिसमें करोडों लोग बिना किसी आमंत्रण या बुलावे के पहुँचते हैं। विश्व के अनेक आश्चर्यों में यह भी एक आश्चर्य है। महर्षि दयानंद प्रयाग में तीन बार पधारे और अखण्ड संवेदना एवं विश्व प्रेरणा का स्वर्णिम इतिहास लिख गए। प्रयाग के प्रसिद्ध नागवासुकी मन्दिर पर महर्षि ने माघ की विकट रातें गुजारी थीं जिसे देखकर अंग्रेज अधिकारी ने दांतों तले अंगुली दबा ली थी। इसी क्रम में महर्षि ने जुलाई 1874 ई. में लगभग तीन माह रहकर विश्व प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना का शुभारम्भ भी यहीं किया था।

विशेष यज्ञ भूमि होने के कारण इसका नाम 'प्रयाग' पड़ा। यह भूमि गंगा व यमुना नदी और पौराणिक विद्या की देवी कही जाने वाली सरस्वती का संगम होने के कारण प्रसिद्ध है। ज्ञान और सरस्वती की धारा वैसे तो यहाँ हमेशा प्रवाहित होती रहती है लेकिन कुम्भ मेले के विशेष अवसर पर यह धारा ज्ञान की धारा के रूप में पावन बनकर जन–जन को तृप्त करती रही है। वहीं पर पौराणिक मान्यताओं के महंत भी अपना प्रचार–प्रसार करते हैं। 2019 में लगने वाले अर्द्ध कुम्भ के अवसर पर ज्ञान, दर्शन और धर्म प्रचार की धारा प्रवाहित करने का निर्णय जहाँ प्रयाग की आर्य समाजों की ओर से लिया गया है वहीं पर आर्य लेखकों, पत्रकारों और विद्वानों की संस्था 'आर्य लेखक परिषद्' ने मिलकर नव जागरण शिविर लगाकर ज्ञान रूपी सरस्वती की धारा को प्रवाहित करने निर्णय लिया है। 13 जनवरी 2019 से 4 मार्च 2019 तक यह मेला चलेगा। यह अवसर साहित्य वितरण, वेदोपदेश और धर्म प्रचार शिविर के द्वारा समाज सुधार और वैदिक धर्म प्रचार के रूप में सभी आर्य महानुभावों के लिए 'विशेष' बन सकता है। अतः अर्द्धकुम्भ में अपनी आहुति देने के लिए सभी आर्यजन सादर आमंत्रित हैं। शिविर में भोजन और आवास की व्यवस्था पूर्णतः निःशुल्क है, परन्तु सहुलियत के लिए पूर्व पंजीकरण कराना अच्छा रहेगा। यदि प्रचार–प्रसार के लिए आर्यजन किसी तरह सहयोग देना चाहते हैं तो उनका सहर्ष स्वगत है। ज्ञातव्य है, यह विश्व मेला है। करोड़ों लोग मेले में आते हैं, अतः सभी आर्य महानुभावों का भी दायित्व बनता है कि वैदिक धर्म और वैदिक ज्ञान गंगा के प्रचार–प्रचार के लिए अपना तन, मन और धन समर्पित करें जिससे वैदिक धर्म के प्रचार–प्रसार का हमारा मूल उद्देश्य पूरा हो सके।

स्मारिका प्रकाशन के ज्ञान–विज्ञान यज्ञ में यज्ञकर्ता बने

ज्ञान, धर्म, विद्या और आर्ष विचार धारा को 'कुम्भ ज्ञान–विज्ञान यज्ञ स्मारिका' के माध्यम से सुरक्षित करने का संकल्प लिया गया है। जिसमें चारों तत्त्वों (ज्ञान, धर्म, वेद–विद्या व दर्शन) सम्बंधी लेखों का समावेश के अतिरिक्त आर्यसमाजों, आर्य शिक्षण संस्थाओं/संस्थानों का सूक्ष्म परिचय सम्मिलित किया जाएगा। इसके अतिरिक्त आर्य महानुभाव अपनी अपनी संस्था, संस्थान, संगठन, फर्म और निजी तौर पर शुभकामनाएँ व उत्पाद के विज्ञापन के रूप में भी देकर हमें सहयोग कर सकते हैं।सभी प्रकार की सामग्री नवम्बर के अंत तक मेरे पते या अणुडाक पते (ई–मेल) के माध्यम से **भेंज** सकते हैं। लेख (रचना) कृतिदेव 10 या देवनागरी फांट में भी बर्ल्ड फाइल में टंकित कराकर ही भेंजे।

संयोजक/सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
ए–11,त्यागी विहार,
नांगलोई,दिल्ली–110041
वायुदूत : 8178710334/9868235056

प्रबंधक/व्यवस्थापक
आर्य राजेन्द्र(कपूर)
पत्र व्यवहार : आर्यसमाज मुण्डेरा बाजार,
प्रयाग(इलाहाबाद)–211011
राजेन्द्र कपूर, चलभाष : 09889482489

यज्ञों से ऋण मुक्ति

- सरोज वर्मा
जयपुर (राज.)

आमतौर पर पौराणिक जगत् में यह धारणा बनी है कि यज्ञ करने से पुण्य मिलता है। यही कारण है कि पौराणिक परिवारों में 'अगियार' जिसे हम लघु अग्निहोत्र कह सकते हैं की परम्परा रही है। यह धारणा आज भी कायम है। लेकिन शास्त्रीय विधान कहता है कि 'कर्तव्य–कर्म' पुण्य दिलाने वाले नहीं होते बल्कि ऐसे कर्म न करने से पाप अवश्य होता है।वेद–शास्त्र के अनुसार मानव के पैदा होते ही उसके ऊपर कई प्रकार के ऋणों का भार होता है। उनसे उऋण तभी हुआ जा सकता है जब निर्धारित कर्तव्य–कर्मों को कर्तव्य की भावना से निभाया जाता है। महर्षि दयानंद ने आर्यों के लिए प्रतिदिन पंच–यज्ञों का निर्धारण किया है और प्रतिदिन इन्हें करना 'आवश्यक' बताया है। वेद के अनुसार मानव जीवन का अर्थ ही यज्ञ है। यह शरीर भी यज्ञ है। सभी शुभ–कर्म यज्ञ हैं, अग्निहोत्र यज्ञ हैं, अतिथियों का सत्कार यज्ञ है और वृद्धों की सेवा में और सत्कार भी यज्ञ है। यज्ञों की महिमा अनंत है। लेकिन हम इसे कर्तव्य भावना से निभाएं तो इसका सुपरिणाम इस जीवन में ही द्रष्टव्य होने लगते हैं। यज्ञ हमारे जीवन के लिए किस प्रकार और कितने प्रभावशाली होते हैं बता रही हैं समाजसेविका और लेखिका श्रीमती सरोज वर्मा।

– समन्वय सम्पादक

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। जन्म लेते ही प्रत्येक व्यक्ति तीन ऋणों से ऋणी हो जाता है। वे ऋण हैं–देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण। इन्हीं से उनका जीवन चल रहा है। उन ऋणों से उऋण होना आवश्यक है। ब्राह्मणग्रन्थकार लिखते हैं –

'जायमानो ह वै पुरुषस्त्रिभि ऋर्णैर्ऋणवान् जायते।'

(शत. का. 1/7/2/1–5)

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य तीन प्रकार के ऋणों से ऋणी उत्पन्न होता है। ये तीन ऋण– देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण कहलाते हैं।

इन्हीं तीन ऋणों से उऋण होने के लिए वह यज्ञोपवीत धारण करता है। **'उपनयन संस्कार'** में आचार्य द्वारा बालक को यज्ञोपवीत धारण कराया जाता है। स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती ने अपने ग्रन्थ 'उपनयन–सर्वस्व' में लिखा है–'जैसे विवाह संस्कार के बिना व्यक्ति को गृहस्थ का अधिकार नहीं होता, वैसे ही उपनयन–संस्कार के व्यक्ति को विद्या, वेद, यज्ञ और ब्रह्म का अधिकार नहीं होता।' यज्ञोपवीत द्वारा ही ब्रह्मचारी को शिक्षा और यज्ञ का अधिकार 'उपनयन' के रूप में दिया जाता है। यज्ञोपवीत के तीन सूत्र उन ऋणों की स्मृति दिलाते रहते हैं और प्रेरणा देते हैं कि इन ऋणों से जीवन में मुक्त होना है।

महर्षि मनु लिखते हैं –

'शास्त्र द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार व्यक्ति (ब्रह्मचर्य–पालन एवं अध्ययन–अध्यापन से) ऋषिऋण को, (सन्तानोत्पत्ति तथा माता–पिता की सश्रद्ध सेवा से) पितृ–ऋण का तथा (यज्ञादि के अनुष्ठान से) देव–ऋण को चुकाता है।' – (मनु.4/257)

महर्षि पतंजलि ने परमेश्वर के साक्षात्कार के लिए तथा भौतिक एवं सामाजिक जीवन को सामंजस्यपूर्ण बनाने के लिए पंचमहायज्ञों का विधान किया है। पंचमहायज्ञ हैं– ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ, अतिथियज्ञ और पितृयज्ञ। ब्रह्मयज्ञ का अपर नाम **'ऋषियज्ञ'** है, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना–पढ़ाना, सन्ध्योपासना, योगाभ्यास **'ब्रह्मयज्ञ'** है। विद्वानों का संग सेवा, पवित्रता, दिव्य गुणों का धारण, दातृत्व, विद्या की उन्नति और अग्निहोत्र करना **'देवयज्ञ'** है। माता–पिता आदि गुरुजनों की सेवा और हर प्रकार से उन्हें सन्तुष्ट रखना–प्रसन्न रखना **'पितृयज्ञ'** है। अकस्मात् धार्मिक, सत्योपदेशक, सबके उपकारार्थ

सर्वत्र घूमनेवाला, पूर्ण विद्वान् परमयोगी, संन्यासी गृहस्थ में आवे तो उसका सत्कार करना **'अतिथियज्ञ'** है। किसी दुःखी भूखे प्राणी, रोगी और पशु–पक्षियों को अन्न देना **'बलिवैश्वदेव'** यज्ञ है।

ऋषिऋण–ज्ञान सम्पन्न आचार्यों से हमने नैमेत्तिक ज्ञान प्राप्त किया, जिनके माध्यम से ज्ञान का आदान–प्रदान हुआ, हम उन ज्ञान–प्रदाता के ऋणी हैं, यह **ऋषिऋण** है। इस ऋण को ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन एवं अधिकाधिक ज्ञान अर्जन कर इस ज्ञान गंगा को आगे प्रवाहित करते रहने से **'ऋषिऋण'** से उऋण हो सकते हैं। इस प्रकार ब्रह्मचर्य आश्रम (शिक्षा प्राप्ति का काल) ऋषिऋण से उऋण होने का माध्यम है।

मानव निर्माण में संस्कारों का विशिष्ट महत्त्व है। इस बात को सभी स्वीकार करते हैं कि समग्र जीवन को उन्नत बनाने के लिए सुव्यवस्थित दिनचर्या और संस्कारों से युक्त अच्छी शिक्षा का होना परम आवश्यक है परन्तु वर्तमान समय में हमारे देश में प्रचलित शिक्षा संस्कारों से विहीन है। यह केवल व्यवसाय पाने का माध्यम बन कर रह गई है। यही कारण है कि आज का विद्यार्थी ऐसी शिक्षा चाहता है जो उसे जीविकोपार्जन के योग्य बना सके। संस्कार विहीन शिक्षा का दुष्प्रभाव भी परिलक्षित हो रहा है– हमारे देश की संस्कृति महान् है फिर भी पाश्चात्य संस्कृति को अपनाने की होड़ मची हुई है।

अतः वर्तमान समय में संतानों में अच्छे संस्कारों का बीजारोपण करने का माता–पिता का दायित्व बढ़ जाता है। महर्षि दयानन्द के अनुसार दिव्य गुणों से युक्त संतान का निर्माण तभी हो सकता है जब माता–पिता स्वयं स्वस्थ, शिक्षित, सदाचारी एवं धार्मिक हों। क्योंकि माता–पिता के उपदेशों से अधिक उनके आचार–विचार और आहार–विहार का उनकी संतान पर गहरा और चिरस्थायी प्रभाव होता है।

वेद में आया है–**'जो माता–पिता पूर्ण ब्रह्मचर्य से सब विद्याओं और शिक्षाओं का संग्रहित करके परस्पर प्रेम से स्वयंवर विवाह करके, ऋतुगामी होकर, विधिपूर्वक संतान उत्पन्न करते हैं, उनके वे संतान शुभगुणों से सम्पन्न होकर पितृजनों को निरन्तर सुखी करते हैं।'** – (यजु. 19/48)

देवऋण–जल, वायु, सूर्य आदि जड़ देव निष्काम भाव से हमारा नित्य कल्याण करते हैं। अतः इन जड़ देवों का हम पर ऋण हैं, इसे **देवऋण** कहते हैं। गृहस्थाश्रम के उत्तरदायित्वों से मुक्त होकर वानप्रस्थ आश्रम में स्वाध्याय एवं तपस्यादि में संलग्न होकर अपनी विद्या एवं अनुभवों का लाभ दूसरों को प्रदान करके तथा सम्पूर्ण समाज की भलाई करके देवऋण से उऋण हो सकते हैं। प्रकृति के संसाधनों का लाभ हम ईश्वरीय व्यवस्था से लेते हैं। जल, वायु, सूर्य आदि जड़ देव निष्काम भाव से हमारा नित्य कल्याण करते हैं। अतः इन जड़ देवों का हम पर ऋण हैं। अतः इनका संरक्षण, सवर्धन और शुद्ध रखना हमारा प्रथम कर्तव्य है। हम जल, वायु आदि को अग्निहोत्र अर्थात् **'देवयज्ञ'** द्वारा शुद्ध रखते हैं।

मानव अपनी आवशकता की पूर्ति के लिए अमूल्य पांचभौतिक तत्त्वों, वृक्ष–वनस्पतियों और जीव–जन्तुओं पर निर्भर हैं। ये सभी जड़ एवं चेतन जगत् सृष्टि के परम हितैषी एवं पर्यावरण के रक्षक हैं। पशु–पक्षी, वृक्ष–वनस्पतियाँ ईश्वरीय व्यवस्था में रहते हुए एक–दूसरों की सहायता करते हैं। ये सभी अपनी स्वाभाविक प्रेरणा से पर्यावरण से अनुकूलता बनाकर अपना जीवन व्यतीत करते रहते हैं। परन्तु मानव अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु इन प्राकृतिक संसाधनों का आवश्यकता से अधिक दोहन और दुरुपयोग करने लगा है। प्राकृतिक पदार्थों का आवश्यकता से अधिक दोहन एवं दुरुपयोग पर्यावरण के लिये हानिकारक है। इस कारण ही प्राणिजगत् को प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ता है। पर्यावरण शुद्धि के दो प्रकार हैं– एक ईश्वरीय व्यवस्था और दूसरा मनुष्यों द्वारा पर्यावरण शुद्धि।

कर्मयज्ञ में अग्निहोत्र की प्रधानता रहती है। गीता में योगेश्वर श्री कृष्ण ने कहा है –

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।।

बहुत देवों को उत्तम बनाओ तब वे देव तुम्हारा कल्याण करेंगे।

पितृऋण– माता–पिता ने हमें जन्म देकर, हमारा पालन–पोषण किया, शिक्षा के द्वारा हमारे जीवन का निर्माण किया, कि जिससे हम संसार में रहने योग्य

बने। हम पर उनका ऋण है, इसे ही **पितृऋण** कहते हैं। इस ऋण को धर्मपूर्वक गृहस्थाश्रम प्रवेश करके, इस आश्रम में माता–पिता को वस्त्र–अन्नादि, ओषध देकर और सेवा–सत्कार करके ही उऋण नहीं हो सकते। इस ऋण से हम तभी उऋण हो सकते हैं जब हम धर्मपूर्वक सन्तानोत्पत्ति, उनका यथावत् पालन–पोषण, संरक्षण और उनको दिव्य गुणों से युक्त कर राष्ट्र को सुशिक्षित संतान प्रदान करते हैं।

दिव्य गुणों से युक्त संतान का निर्माण करना माता–पिता का प्रथम एवं प्रमुख कर्तव्य है, क्योंकि पितृऋण से उऋण होने का यही एक मार्ग है। बच्चे देश की भावी आशाएँ हैं। इन्हीं के हाथों में समाज और देश का भविष्य निर्भर है। आज परिवार में, समाज में, एवं राष्ट्र में सर्वहितकारी एवं सार्वजनिक भावना देखने को नहीं मिलती है। व्यक्ति स्वार्थी हो गया है, स्वार्थ, लोभ–लालच के कारण चारों ओर असत्य, अनाचार, अविश्वास, पारस्परिक वैमनस्य छल–कपट, भ्रष्टाचार आदि भावनाएँ देखने को मिल रही हैं। येनकेन प्रकारेण धन प्राप्ति की दौड़ में लगा हुआ है। बेईमानी, चरित्रहीनता और अनैतिकता जैसे आचरणों ने उसे राक्षस बना दिया है। इसका मूल कारण है हमने वैदिक मान्यताओं को भुला दिया है। वैदिक मान्यताएँ हमें चरित्रवान् मानव निर्माण का उपदेश देती है। वेद में सुन्दर उपदेश मिलता है –

'मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्' (ऋक्. 10/53/6)

हे मनुष्य! तू मनुष्य बन तथा दिव्य मानवों के निर्माण में अपने को लगा।

'विवाह संस्कार' का एक उत्कृष्टतम प्रयोजन दिव्य संतानों का जन्म देना है। इस प्रकार पितृऋण से उऋण होना भी विवाह का उद्देष्य है। पितृऋण से उऋण होने के लिये परिवार, समाज व राष्ट्र को श्रेष्ठ, उत्तम गुणयुक्त चरित्रवान् संतान प्रदान करना है। शास्त्रों का आदेश है–**'ब्रह्मचर्यकाल की समाप्ति पर देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण से उऋण होने के लिए मनुष्य शास्त्रीय मर्यादाओं का पालन करते हुए सन्तानोत्पत्ति करे।'**

माता पिता अपनी समस्त शक्ति एवं धन उनको चिकित्सक, अभियन्ता, वकील, उच्च पदाधिकारी आदि बनाने में लगा रहे हैं, लेकिन उनमें मानवीय गुणों का बीजारोपण करने में प्रमाद कर रहे हैं। परिणाम हम सब के सामने है–आज प्रायः मनुष्य दुःखी है, चारों ओर आपाधापी मची है। हर कोई दूसरे व्यक्ति के जमीन, जायदाद, स्त्री पर अधिकार करने को तत्पर है। नैतिकता सर्वत्र तिरोहित है। नारी उत्पीडन, यौनशोषण जैसी समस्याएँ समाज पर कंलक हैं।

महर्षि मनु लिखते हैं–**'जिस पुत्र के उत्पन्न होने से मनुष्य पितृऋण से मुक्त हो जाता है और जिस पुत्र से मनुष्य को अनन्त सुख मिलता है, वह पुत्र धर्मपुत्र कहाता है और अन्य पुत्र कामजन्य हैं।'** (मनु. 9/107)

आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि मनुष्य **'मनुष्य'** बने। इस हेतु संतानों में मनुष्यता के पर्याय दिव्य गुणों को धारण कराना होगा, वे दिव्य गुण हैं–वेदादि शास्त्रों का अध्ययन, सत्याचरण, अनुशासन, अहिंसा, इन्द्रिय निग्रह (ब्रह्मचर्य), अक्रोध, अस्तेय, अपरिग्रह आदि–आदि। अच्छी शिक्षा और उत्तम संस्कार पाकर बालक अत्यन्त उन्नति को प्राप्त होता है। सुशिक्षित सन्तान ही वेद के अनुसार **'मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्'** को साकार रूप दे सकती है।

उपर्युक्त तीनों ऋणों को व्यक्ति ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रमों में पूरा चुका देता है। किन्तु जो ब्रह्मचर्य या गृहस्थ आश्रम से सीधे ही संन्यासी बन गये हैं, वे योगीजन लोगों को सन्मार्ग और उत्तम कर्मों का उपदेश करने से इन ऋणों से उऋण हो जाते हैं। इसीलिए संन्यास आश्रम में शिखासूत्र का त्याग कर देता है। सभी ऋणों से उऋण व्यक्ति निश्चय ही मोक्ष–प्राप्ति का अधिकारी बन जाता है।

वेद में कहा है–**'हम लोग इस लोक, परलोक और तृतीय लोक (मुक्ति) में भी ऋणरहित हो जायें। इसी भाँति जो देवयान और पितृयाण से प्राप्त लोक हैं, उन सब में ऋणों से मुक्त होकर रहा करें।'** ************

– (अथर्व 6/117/3)

(लेखिका आर्य लेखक परिषद् से जुड़ी हुई है)

आर्य लेखक परिषद् पत्रिका और आर्य लेखक परिषद् की वेबसाइट के लिए आर्य लेखक बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजे।

ऋग्वेद में कुम्भ शब्द के प्रयोग

- डॉ. प्रवेश सक्सेना

'कुम्भ' शब्द के उच्चारणमात्र से 12 वर्ष में लगने वाले 'कुम्भ मेले' का ही स्मरण हो आता है या हरिद्वार, नासिक और उज्जैन में लगनेवाले कुम्भ की याद आती है। पर 'कुम्भ' शब्द को देखें तो यह भले ही इन विशिष्ट संदर्भों से जुड़ा हो पर इसका शाब्दिक अर्थ है 'घट', हिंदी में 'घड़ा'। घट, घड़ा, कलश आदि पर्याय तो हैं पर सबका अर्थ 'मंगल-भावना' से जुड़ा है। पूर्णघट भले ही वह गंगाजल से परिपूर्ण हो या साधारण जल से अथवा धान्यादि से–एक मांगलिक चिह्न है। यह एक शुभ प्रतीक है जिसका प्रयोग धार्मिक, सांस्कृतिक अवसरों पर तो किया ही जाता है चित्रकलादि में पूर्णघट या पूर्ण-कुम्भ जिस पर नारियल, आम्रपर्ण और पुष्पादि रखे रहते हैं, चित्रित होता है। यूं 'कुम्भ' की अवधारणा 'अमृत मंथन' की कथा से जुड़ी है जब क्षीर सागर से 'अमृत कुम्भ' लिए धन्वन्तरि प्रकट हुए।

आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि कुम्भ शब्द आधुनिकयुग में ही प्रयुक्त नहीं होता इसका मूल वेद में भी है। यूं तो पूरे वैदिक साहित्य में इस शब्द के बहुत से उदाहरण मिल जाएंगे पर चिर पुरातन ऋग्वेद में भी 'कुम्भ' शब्द, भले ही कुछेक बार ही सही, उपस्थित है। याद आता है बहुत पहले एक कविता लिखी थी 'शब्द यायावर होते हैं'। सच ही 'कुम्भ' भी उन शब्दों में से एक ऐसा शब्द है जो चिरयात्रिक हैं जो ऋग्वेद से यात्रा करते-करते हम तक पहुंचे हैं, कभी उनके रूप बदल जाते हैं कभी कभी वे अपरिवर्तनीय बने रहते हैं। 'कुम्भ' शब्द (घट, कलश और घड़े के अर्थ को व्यक्त करते हुए) आज तक मूलरूप में व्यवहृत हो रहा है। यूं बोल-चाल में 'घड़ा' पर्याय प्रयुक्त होता है। फ्रिज़ादि के होने पर भी, गर्मियों में उसकी याद आ जाती है। नवरात्र में 'पूर्णघट' प्रतिष्ठित किया जाता है। बहुत से पौराणिक कृत्यों में जलपूर्ण घट की प्रतिष्ठा होती है। विवाहादि मांगलिक अवसरों पर भी द्वार पर एक के ऊपर एक घट रखे जाते हैं। भागवत् पुराण की कथा के अवसर पर 'कलश यात्राएं' निकाली जाती हैं। भारत जैसे उष्ण जलवायु वाले देश में 'कुम्भ' अर्थात् घड़े की अपनी महत्ता है। राजस्थान में तो जल भरने के लिए कुम्भ अर्थात्, घड़े का प्रयोग सदियों से हो रहा है–एक के ऊपर एक भरे घट सिर पर लिए स्त्रियां आज भी दिख जाएंगी। यही नहीं लोकनृत्य में भी घड़े सिर पर रखकर करने वाला नृत्य प्रसिद्ध है! यूं कुम्भ घट या मूलरूप से मिट्टी का ही होता था–बाद में धातु के बने कुम्भों का प्रयोग भी प्रचलन में हुआ। स्टील, पीतल के अतिरिक्त रजत स्वर्ण के कुम्भ भी प्रचलन में रहे हैं।?

ऋग्वेद 10.89.7 में 'नवं कुम्भम्' प्रयोग मिट्टी के कच्चे घड़े की ओर संकेत करता है।

इन्द्र ने पर्वत को वैसे ही काट डाला जैसे कि कोई मिट्टी के घड़े को सरलता से तोड़ दे।

एक अन्य मंत्र में 'सुरा पूर्ण शत कुम्भों' का उल्लेख है। यहां 'सुरा' मदिरा नहीं अपितु वर्षा जल अभिप्रेत है। अश्विन देवों को संबोधित यह मंत्र इस प्रकार हैं–

युवं नरा स्तुवते पज्रियाय
कक्षीवते अरदतं पुरंधिम्
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः
शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः॥ (1.116.7)

यद्यपि टी एच ग्रिफिथ ने अपने अनुवाद में कहा है–Ye poured forth from the hoof of your strong charger a hundred jars of wine as from a strainer. लेकिन footnote में 'strong charger' का अर्थ ऐसे दिया है–the rushing rain cloud, from which the Ashwins poured down copious showers. ग्रीक माइथोलोजी में भी पेगेसस घोड़े (Horse Pegasses) तथा फाउंटेन हिप्पोक्रेन (Fountain Hippocrene) का उल्लेख यही दर्शाता है। इस मंत्र में अश्विनी देवताओं को संबोधित करके कहा जा रहा है–तुम दोनों नेताओं ने नगर के संरक्षण करने में समर्थ बुद्धि और शक्ति को प्रदान किया। बलिष्ठ घोड़े के खुर के समान आकार वाले विशेष बड़े बर्तन से शुद्ध जल के सौ घड़े तुम दोनों ने भरकर रखे। सातवलेकर के अनुसार नेता नागरिकों को शत्रु से बचाकर स्वयं को संरक्षण करने की प्रेरणा, बुद्धि तथा शक्ति देते हैं। वे प्रेरित करते हैं कि लोग शुद्ध वृष्टि जल संरक्षित करें–बड़े बड़े पात्रों में भरकर रखें।

एक और मंत्र है जहां मधुपूर्ण कुम्भों का उल्लेख है–

तद् वां नरा शंस्यं
पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन्
शफादश्वस्य वाजिना जनाय
शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम्।

'पज्रकुल के कक्षीवान् ऋषि के लिए तुम्हारा प्रशंसनीय कार्य था बलिष्ठ घोड़े के खुर के आकार के समान बड़े पात्र से 'मधु' के सौ घड़े लोगों के पीने के लिए–भरकर रखे थे'। 'मधु' मीठे जल के लिए और बहुत बार वृष्टि के जल के लिए भी प्रयुक्त होता है। मधु का अर्थ शहद भी है जो मीठा भी होता है पौष्टिक भी होता है। मधु से भरे कुम्भ उस समय के समाज की समृद्धि का भी प्रतीक हैं। ऋग्वेद में इन संदर्भों के अतिरिक्त एक और महत्त्वपूर्ण संदर्भ है–

सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः
कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्

ततो ह मान उदियाय मध्यात्

ततो जातमृषिमाहुवर्सिष्ठम्॥ ऋग्वेद 7.33.13

यहां वसिष्ठ के जन्म की कथा बताई गई है जो विद्युत्, प्रकाश या अग्नि के रूप थे। अगस्त्य भी उसी प्रकार जन्मे जैसे वसिष्ठ। वही उन्हें मनुष्यों तक लाए–

Born at the sacrifie, urged by adorations, both with a common flow bedewed the pitcher

Then from the midst thereof there rose up Maan (Agastya) and thence they say was born the sage Vasishtha.

ग्रिफिथ के अनुवाद से मंत्र का भाव स्पष्ट नहीं होता। सातवलेकर ने इसका अनुवाद कुछ यूं किया है–

'यज्ञ में दीक्षा लिए, मंत्रों द्वारा प्रेरित हुए मित्रावरुणों ने कुम्भ में अपना रेत (वीर्य) एक ही समय में गिराया। उसके बीच में से मान (माननीय अगस्त्य) प्रकट हुए तथा उसी से वसिष्ठ ऋषि को जन्मा कहते हैं। प्रस्तुत मंत्र से ध्वनित होता है कि अगस्त्य और वसिष्ठ दोनों का जन्म मित्रावरुण से हुआ। अगस्त्य को तो कुंभज कहा भी जाता है। लेकिन मन्त्र का वास्तविक अर्थ सातवलेकर की व्याख्या से ही स्पष्ट होता है–

'प्राण-अपान रूपी मित्र और वरुण जीवन रूपी यज्ञशाला में बैठकर शतसांवत्सरिक यज्ञ कर रहे हैं। इनकी वीर्यरूपी शक्ति प्रवाहित होकर हृदय या मस्तिष्करूपी कुंभ में एकत्रित होती है। मस्तिष्क में एकत्रित हुई उस शक्ति से अगस्त्य और वसिष्ठ रूपी ज्ञानियों का जन्म होता है।'

इस प्रकार ऋग्वेद में 'कुम्भ' शब्द के प्रयोग विभिन्न अर्थों को संजोए हुए हैं। 'कुम्भ' एक प्रतीक है–वह विषपूर्ण भी हो सकता है अमृतपूर्ण भी। हितोपदेश सावधान करता है कि–

वर्जयेत् तादृशं 'विषकुम्भं पयोमुखम्' मित्रम्।

मुख पर मीठे पर भीतर जहर से भरे कुम्भ के जैसे मित्र को त्याग दे। जल जीवन है, अमृत है, सृष्टि का मूल है उसे कुम्भ में संरक्षित रखने का अभिप्राय भी प्रकारांतर से यही है कि हम जल की शुद्धता बचाए रखें। इस सदी में जब जल धरती पर कम से कम होता जा रहा है, बहुत बार जल को लेकर विवाद, लड़ाई-झगड़े हो जाते हैं। हम सबका कर्त्तव्य है जलसंरक्षण के लिए जागरूक रहें। 'अमृत कुम्भ' सा जीवन हो–सब तरफ अमृत छलकाते चलें–वर्ष 2019 के 'कुम्भोत्सव' कुम्भ मेले का यही लक्ष्य रहे, यही नारा रहे।

राम नाम अपराधों को न्यूट्रलाइज करने का नहीं, व्यक्ति के लिऐ श्रेष्ठ मार्ग प्रशस्त करने का साधन होना चाहिए

- सीताराम गुप्ता
ए.डी.–106–सी, पीतमपुरा, दिल्ली
चलभाष नं. 09555622323

कई रचनाएँ बड़ी सुंदर होती हैं। भाव की दृष्टि से भी और शिल्प की दृष्टि से भी। ऐसी रचनाओं को कौन बार–बार नहीं पढ़ना चाहेगा? कई रचनाओं में शिल्प कमज़ोर होता है लेकिन भाव की दृष्टि से वे समृद्ध होती हैं। कवि जो संदेश देना चाहता है वह पाठक अथवा श्रोता तक पहुँच जाता है। इसी में सृजन की सार्थकता है। रचना सार्थक व उद्देश्यपूर्ण हो और उसके श्रवण, पठन अथवा गायन में आनंद आए तो सोने पर सुहागे वाली उक्ति चरितार्थ होगी। इसके विपरीत कुछ ऐसी रचनाएँ भी देखने–सुनने में आती हैं जो शिल्प की दृष्टि से तो अत्युत्तम होती हैं लेकिन उनका कथ्य सार्थक व उद्देश्यपूर्ण नहीं होता। कई बार उनका जो भाव होता है वो अत्यंत भ्रामक अथवा नकारात्मक ही होता है। ऐसी रचनाओं को भी पाठक सहजता से स्वीकार कर लेने को बाध्य अथवा विवश हो जाते हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने कहा कि केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए। मनोरंजन ही नहीं मात्र भाषाई चमत्कार भी उत्कृष्ट कवि कर्म नहीं माना जाना चाहिए। अंधभक्ति व अंधविश्वास भी साहित्य को निकृष्टता ही प्रदान करते हैं।

यदि रचना के बाह्य सौंदर्य से प्रभावित होकर पाठक अथवा श्रोता उसके भाव को भी आत्मसात कर लेता है तो प्रत्यक्ष नहीं तो परोक्ष रूप से उसका दुष्प्रभाव ही उस रचना के पाठक अथवा श्रोता के मानस पर पड़ेगा। ये धर्म–अध्यात्म की ग़लत व्याख्या का ही परिणाम है जो दुनिया के कोने–कोने में लंपट बाबा, गुरू व अन्य तथाकथित धर्माधीश अपनी दुकानदारी जमाए बैठे हैं जिससे धर्म की उन्नति नहीं अवनति होती जा रही है। ये अंधभक्ति व अंधविश्वास का ही परिणाम है जिसके कारण जगह–जगह साधकों का आर्थिक ही नहीं मानसिक, दैहिक व यौन शोषण हो रहा है। गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूँ पाँय, बलिहारी गुरु आपने गोविंद दिए मिलाय। कबीर के इस दोहे की आड़ में तथाकथित धर्म गुरुओं ने धर्मभीरू भोली–भाली जनता का जमकर शोषण ही किया है। आज भी ऐसे दोहे थोक के भाव लिखे जा रहे हैं। एक दोहा कहीं पढ़ने का अवसर मिला :

लाख लाख अपराध हों, कोटि कोटि हों पाप,
मन से जप ले राम को, मिटें सकल संताप।

बहुत ही सुंदर दोहा है। भाषा भी सुंदर व कई अलंकारों से युक्त है। शिल्प की दृष्टि से भी उत्कृष्ट। छंद दोष से मुक्त। बार–बार पढ़ने को मन करे ऐसी लयात्मकता भी। लेकिन क्या कथ्य भी सार्थक व उद्देश्यपूर्ण कहा जा सकता है? अधिकांश लोग यही कहेंगे कि कथ्य सार्थक व उद्देश्यपूर्ण है। राम नाम की महिमा ही तो बतलाई गई है। इसमें ग़लत क्या है? यदि आपको इसमें दोष दिखलाई पड़ रहा है तो कमी आपमें है। आपमें भक्ति भावना की कमी है। आप में आस्तिकता का अभाव है। आप नास्तिक हैं। एक नास्तिक को भला ऐसी भक्तिपूर्ण व सरस बातें कैसे अच्छी लग सकती हैं? और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। इसी बहुत कुछ कहलवाने के डर से अथवा स्वयं पर नास्तिकता का ठप्पा लग जाने के डर से लोग अपना मुँह बंद रखने में ही अपनी भलाई समझते हैं।

ये बात तो ठीक लगती है कि हमसे जीवन में अपराध अथवा पाप न हों, इसके लिए सही मार्ग पर चलें इसलिए राम की शरण में चले जाएँ लेकिन अपराध अथवा पाप कर्म करके उनके संताप से बचने के लिए राम नाम के जाप का सहारा ले लें ये बात कुछ बहुत अच्छी नहीं लगती। अपराध अथवा पाप हो जाना स्वाभाविक है लेकिन उसके लिए दण्ड अथवा प्रायश्चित का विधान है। वह अनिवार्य भी है। हमारे अपराध करने, पाप करने अथवा अन्य किसी भी ग़लत कार्य के करने से किसी भी व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र को जो नुक़सान पहुँचता है उसका क्या? राम नाम के

जाप से अपराधी यदि साफ बच निकलता है तो इससे पीड़ित को न्याय कैसे मिलेगा? यदि राम नाम के जाप से अपराधी साफ बच निकलता है अथवा वह अपराधबोध से मुक्त हो जाता है तो वो अपने अपराध अथवा पाप का परिमार्जन क्यों, कब और कैसे करेगा? हमारे यहाँ तो अपराध करके सज़ा से बचने तक के लिए अनुष्ठान उपलब्ध हैं। वैसे ये सम्भव नहीं लेकिन यदि ऐसे अनुष्ठान सम्भव हैं जो अपराध करने के बाद सज़ा से बचा सकते हैं तो मेरे विचार से ऐसे अनुष्ठान ही अनैतिक हैं।

अपराध करने के बाद सबको अपराधबोध होता है जो मन को सालता रहता है। राम की शरण में आओ, उसका नाम रटो और ग्लानिबोध की पीड़ा अथवा संताप से मुक्ति पाओ ऐसा है राम नाम का प्रभाव। शोषण करने वाला तो राम नाम ने बचा लिया लेकिन शोषित अथवा पीड़ित का क्या होगा? जब शोषक, अपराधी, अत्याचारी अथवा दुष्कर्मी राम नाम रूपी धर्म–अध्यात्म व आस्तिकता का झंडा उठा लेता है तो उसकी तरफ तो उँगली उठाना भी सम्भव नहीं। और अपराधी जब एक बार ऐसे सरल उपाय से उबर जाएगा तो उसके लिए दूसरे बड़े अपराध, पाप अथवा दूसरे ग़लत कार्य करना मुश्किल नहीं होगा क्योंकि हर बार उसके पास संताप को मिटाने का साधन मौजूद रहेगा। राम नाम पलायन अथवा संताप को मिटाने का साधन नहीं अपितु यह जीवन को श्रेष्ठ मार्ग की ओर ले जाने वाला साधन है। वर्तमान समय में समाज में मुझे तो एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं दिखलाई पड़ता जो अपराध अथवा पाप के बाद राम नाम रटने से अच्छा व्यक्ति बन गया हो।

वेदों में बार–बार यही प्रार्थना की गई है कि हे प्रभु हमें श्रेष्ठ मार्ग की ओर ले चल। देश काल के अनुसार श्रेष्ठ मार्ग पर चलना ही वास्तविक धर्म का पालन है। जब से लोगों ने धर्म को अपने बचाव के साधन के रूप में प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है धर्म की अवनति प्रारम्भ हो गई है। धर्म अपराधी या पापी को अपराध के बोध से मुक्त करने का नहीं अपितु उसे कभी भी अपराध अथवा पाप के मार्ग पर न जाने देने का साधन अथवा उपाय है। धर्म एक श्रेष्ठ व्यवस्था है, एक श्रेष्ठ मार्ग है। हर स्थान पर उसका पालन करना अनिवार्य है। यदि हम अपनी दिनचर्या, जीवनवृत्ति व सम्बन्धों के निर्वहन में हर समय व हर स्थान पर धर्म का मार्ग अपनाएँगे तो न तो ग़लत कार्य ही करेंगे और न ग़लत कार्यों के संताप को दूर करने के लिए तोते की तरह राम राम रटने की ही ज़रूरत पड़ेगी जिसे किसी भी तरह से उचित नहीं कहा जा सकता। राम नाम तो व्यक्ति के समग्र विकास का साधन होना चाहिए न कि नकारात्मक क्षुद्र व संकुचित उद्देश्यों की पूर्ति का माध्यम।*******************************

दैत्य और देवता

दैत्यों और देवताओं की पहचान के लिए ब्रह्मा ने एक उत्सव का आयोजन कराया । बड़ी तादाद में दैत्य और देवता इकट्ठे हुए । ब्रह्माजी को दोनों समुदायों की परीक्षा लेनी थी। उन्हें एक तरीका सूझा । जब भोजन करने का वक्त आया तो दोनों समुदायों के व्यक्तियों के हाथों में एक सीधी लकड़ी बांधवा दी और कहा–'अब सभी मिलकर भोजन करें।'

हाथ तो मुड़ नहीं सकते थे। देवताओं को एक तरकीब सूझी वे एक–दूसरे को भोजन कराने लगें। लेकिन दैत्य भोजन उठाते तो पीछे फेंका जाता। यह देखकर मौजूद जन समुदाय बोल पड़ा–यही फर्क होता है–'दैत्य और देवताओं में।'

देव वह है जो दूसरों को खिलाता है और दैत्य वह है जो न खुद खाता है और न दूसरों को ही खिलाना जानता है।

– शकुंतला

चंवर वंश : इतिहास के आइने में

महाभारत काल के समय से ही वैदिक वर्ण–व्यवस्था जन्मगत जाति–व्यवस्था में परिवर्तित होने लगी थी। जिस वर्ण–व्यवस्था में गुण–कर्म–स्वभाव को मनुष्य की पहचान और योग्यता का आधार माना गया था, वह वर्ण–व्यवस्था स्वार्थवादियों और कर्महीनों ने जन्म से निर्धारित करने का षड्यंत्र किया जिसमें वे सफल भी रहें। इसी समय छुआछूत, जात–पांत, ऊंच–नीच और अन्य अमानवीय प्रवृतियों को बढ़ावा मिला। स्वार्थवादियों ने अशिक्षित जनमानस को जन्मगत जाति–व्यवस्था को धर्म सम्मत और वेद सम्मत सिद्ध करने के लिए पुराणों की रचना करके जनमानस को धर्म और ईश्वर के नाम पर शोषण करना प्रारम्भ किया। इसी समय जन्म के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को ही वेद सम्मत प्रचारित–प्रसारित किया गया। इसी समय जाति–हिंसा, जाति–घृणा और जाति–शोषण को धर्माधारित प्रचारित–प्रसारित किया गया। यही वह काल था जब ऐसे घृणित शब्दों को 'जाति–विशेष' के लिए प्रयोग करना प्रारम्भ किया गया जो अमानवीय और हिंसक थे। इससे जहाँ वैदिक आदर्श समाज की व्यवस्था समाप्त हुई वहीं पर जाति आधारित अमानवीय समाज कुव्यवस्था का सूत्रपात हुआ। जाति के नाम पर किस प्रकार समाज विखण्डित और शोषित हुआ, इसे जातियों में बटे हिंदू समाज को देखकर समझा जा सकता है। वंश परम्परा किसी विशेष वंश में पैदा होने वाले व्यक्ति के नाम से चलती है या ऋषि–महर्षियों के नाम पर। लेकिन हिंदू समाज में जाति विकृतियां कितनी विकट हैं, इसे चमार या चंवर वंश के सम्बन्ध में प्रचालित धारणा से समझा जा सकता है। प्रस्तुत लेख में वंश परम्परा में चंवर वंश पर प्रकाश डाला गया है। लेख प्रकाशित करने का हमारा उद्देश्य यह है कि जनमानस में 'चमार' जाति के सम्बन्ध में प्रचलित धारणा और सत्यता को बताना है। हम इतिहास के इस ओर आपका ध्यान खींचना चाहते हैं। जिससे सत्य और मान्यता–धारणा को इतिहास और तर्क के धरातल पर समझा जा सके।

– समन्वय सम्पादक

अलाऊद्दीन खिलजी के शासनकाल से पहले पूरे भारतीय इतिहास में 'चमार' नाम की किसी जाति का उल्लेख नहीं मिलता। आज जिन्हें हम चमार जाति से संबोधित करते हैं और जिनके साथ छूआछूत का व्यवहार करते हैं, दरअसल वह वीर चंवर वंश के योद्धा थे।

भारत के सबसे विश्वसनीय इतिहास लेखकों में से एक विद्वान कर्नल टाड को माना जाता है जिन्होनें अपनी पुस्तक **द हिस्ट्री आफ राजस्थान** में चंवर वंश के बारे में विस्तार से लिखा है।

प्रख्यात लेखक डॉ विजय सोनकर शास्त्री ने भी गहन शोध के बाद इनके स्वर्णिम अतीत को विस्तार से बताने वाली पुस्तक हिन्दू चर्ममारी जाति एक स्वर्णिम गौरवशाली राजवंशीय इतिहास लिखी। महाभारत के अनुशासन पर्व में भी इस राजवंश का उल्लेख है। डॉ शास्त्री के अनुसार प्राचीनकाल में न तो चमार कोई शब्द था और न ही इस नाम की कोई जाति ही थी ।

भारत में सभी सुसंगठित पंचायतों में 150 से अधिक चमार समुदाय की उपजातियों की पहचान होती है, इनमें राजवंशीय क्षत्रिय गौत्र मिलते है जिनमे त्वंर या तोमर, तूर, पातलीय–पातलान, बशिषट, भदोरिया–भभौरिया, सोलंकी, परमार, पंवार, दहिया, रोहिलला आदि गौत्र संमिलित है।

डॉ विजय सोनकर शास्त्री के अनुसार तुर्क आक्रमणकारियों के काल में चंवर राजवंश का शासन भारत के पश्चिमी भाग में था और इसके प्रतापी राजा चंवरसेन थे। इस क्षत्रिय वंश के राज परिवार का वैवाहिक सम्बन्ध बाप्पा रावल वंश के साथ था। राणा सांगा व उनकी पत्नी झाली रानी ने चंवरवंश से संबंध रखने वाले संत रैदासजी को अपना गुरु बनाकर उनको मेवाड़ के राजगुरु की उपाधि दी थी और उनसे चित्तौड़ के किले में रहने की प्रार्थना की थी।

संत रविदास चित्तौड़ किले में कई महीने रहे थे। उनके महान व्यक्तित्व एवं उपदेशों से प्रभावित होकर बड़ी संख्या में लोगों ने उन्हें गुरू माना और उनके

अनुयायी बने। उसी का परिणाम है आज भी विशेषकर पश्चिम भारत में बड़ी संख्या में रविदासी हैं। राजस्थान में चमार जाति का बर्ताव आज भी लगभग राजपूतों जैसा ही है। औरतें लम्बा घूंघट रखती हैं आदमी ज्यादातर मूंछे और पगड़ी रखते हैं।

संत रविदास की प्रसिद्धी इतनी बढ़ने लगी कि इस्लामिक शासन घबड़ा गया। सिकन्दर लोदी ने मुल्ला सदना फकीर को संत रविदास को मुसलमान बनाने के लिए भेजा। वह जानता था की यदि रविदास इस्लाम स्वीकार लेते हैं तो भारत में बहुत बड़ी संख्या में इस्लाम मतावलम्बी हो जायेंगे लेकिन उसकी सोच धरी की धरी रह गयी। स्वयं मुल्ला सदना फकीर शास्त्रार्थ में पराजित हो कोई उत्तर न दे सका और उनकी भक्ति से प्रभावित होकर अपना नाम रामदास रखकर उनका भक्त वैष्णव (हिन्दू) हो गया। दोनों संत मिलकर हिन्दू धर्म के प्रचार में लग गए जिसके फलस्वरूप सिकंदर लोदी आगबबूला हो उठा एवं उसने संत रैदास को कैद कर लिया और इनके अनुयायियों को चमार यानी अछूत चंडाल घोषित कर दिया। उनसे कारावास में खाल खिचवाने, खाल–चमड़ा पीटने, जूती बनाने इत्यादि काम जबरदस्ती कराये गये। उन्हें मुसलमान बनाने के लिए बहुत शारीरिक कष्ट दिए। लेकिन उन्होंने कहा :–

वेद धर्म सबसे बड़ा, अनुपम सच्चा ज्ञान,
फिर मै क्यों छोड़ू इसे, पढ़ लू झूठ कुरान
वेद धर्म छोड़ू नहीं, कोसिस करो हजार,
तिल–तिल काटो चाहि, गोदो अंग कटार
(रैदास रामायण)

संत रैदास पर हो रहे अत्याचारों के प्रतिउत्तर में चंवर वंश के क्षत्रियों ने दिल्ली को घेर लिया। इससे भयभीत हो सिकन्दर लोदी को संत रैदास को छोड़ना पड़ा था। संत रैदास का यह दोहा देखिए :–

बादशाह ने वचन उचारा। मत प्यारा इसलाम हमारा।।
खंडन करै उसे रविदासा। उसे करौ प्राण कौ नाशा।।
जब तक राम नाम रट लावे। दाना पानी यह नहीं पावे
जब इसलाम धर्म स्वीकारे। मुख से कलमा आपा उचारै।।
पढे नमाज जभी चितलाई। दाना पानी तब यह पाई।।

समस्या तो यह है कि आपने और हमने संत रविदास के दोहों को ही नहीं पढ़ा, जिसमें उस समय के समाज का चित्रण है जो बादशाह सिकंदर लोदी के अत्याचार, इस्लाम में जबरदस्ती धर्मांतरण और इसका विरोध करने वाले हिंदू ब्राह्मणों व क्षत्रियों को निम्न कर्म में धकेलने की ओर संकेत करता है।

चंवर वंश के वीर क्षत्रिय जिन्हें सिकंदर लोदी ने 'चमार' बनाया और हमारे–आपके हिंदू पुरखों ने उन्हें अछूत बना कर इस्लामी बर्बरता का हाथ मजबूत किया। इस समाज ने पददलित और अपमानित होना स्वीकार किया, लेकिन विधर्मी होना स्वीकार नहीं किया। आज भी यह समाज हिन्दू धर्म का आधार बनकर खड़ा है।********************************

गठिया से निजात पाने के लिए करें गरुड़ासन

विधि– खुली हवा में सीधे सावधानी से खड़े हो जाइए। तीन बार तेजी से कपालभांति यानी फेफड़े की हवा को निकाल दें। फिर पैरों के दोनों घुटनों को धीरे से थोड़ा–सा झुकाइए। बाएं पैर को सावधानीपूर्वक दाहिने पैर में लपेटिए। इसी तरह दोनों हाथों को ठीलाकरें और मोडत्रकर आपस में दोनों को लपेटिए। श्वास की गति सामान्य तरीके से चलने दीजिए। इस दशा में जितनी देर तक रह सकें, रहें। पहले इस आसन को एक–दो मिनट तक करें, फिर समय बढ़ाते जाएं। इस आसन को जितनी अधिक देर तक करेंगे, उतना ही लाभ होता है।

लाभ– पुरुषों के ब्रह्मचर्य रहने में मदद मिलती है। अण्डकोष के रोग नहीं होते हैं। गठिया की बीमारी के लिए सबसे बेहतर आसन है।

आहार– मांस–मदिरा को सेवन न करें। ठंठी प्रकृति की चीजों का सेवन न करें। देर से पचने वाली चीजों का सेवन कभी न करें। तली–भुनी चीजें न खाएं।

जन्मदिवस पर विशेष

जन्म – २८ जनवरी १८६५

आजादी के मंत्र को जनांदोलन बनाने वाले भारत के लाल

आजादी के मर्म को जनांदोलन बनाने वाले, महान् राष्ट्रवादी, समाज सुधारक, लेखक और सम्पादक अजेय क्रांतिकारी लाला लाजपत राय भारत के उन महान् देश सपूतों में से थे जिन्होंने अंतिम श्वास तक अंग्रेजी हुकूमत को निर्भीकता से ललकारते रहे। जिन्होंने अंग्रेजी शासन की गोलियों और तोपों के सामने निडरता के साथ जान हथेली पर रखकर भारत की गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के लिए अपने तन का कतरा–कतरा कुर्बान कर दिया। साइमन कमीशन के भारत आने के विरोध में लाला जी ने भारतीय इंकलाब को एक नई दिशा देने के लिए लोगों को जागृत करने का अखंड प्रयास किया। इसी प्रयास में अंग्रेजी पुलिस की लाठियां उन्हें खानी पड़ी, लेकिन उन्होंने कदम को पीछे नहीं हटाया। लाठियां खाते हुए लाला जी ने कहा था, ''मुझ पर जो लाठियां बरसाई गईं हैं, वे भारत में बर्तानवी हुकूमत के ताबूत में आखिरी कील साबित होगी''। उनके ये शब्द सच साबित हुए। अंग्रेजी शासन की लाला जी पर पड़ी लाठियां भारत में एक नई फिरंगी विरोधी लहर पैदा करने का कारण बनीं। ऐसे अजेय साहसी योद्धा का शहीद होना निरर्थक नहीं गया। सारे देश में साइमन कमीशन के विरोध और अंग्रेजी हुकूमत को उखाड़ फेकने का नया संग्राम ही छिड़ गया।

लाला लाजपत राय का जन्म पंजाब के फिरोजपुर जिले के गांव ढुडीके में एक साधारण परिवार में 28 जनवरी 1865 को हुआ। उनका गांव ढुडीके 1905–07 में किसान लहर में सरगर्म और सबसे लोकप्रिय रहा था। यह वही गांव है, जो 1914–15 की गदर पार्टी लहर का दूसरे चरण का प्रमुख केद्र रहा। पंजाब के क्रांतिकारी इसी गांव से अपनी गतिविधियों को संचालित कर रहे थे। इसी गांव में पाला सिंह ढुडीके और ईश्वर सिंह ढुडीके ने भारत की आजादी के संग्राम की ज्वाला धधकाई थी। लालाजी पर इसका बहुत गहरे तक असर हुआ। वह आजादी के लिए संकल्पित हो गए । बचपन से ही शिक्षा, समाज और संस्कृति के प्रति रुचि होने के कारण सामाजिक और शैक्षिक विषयों में रुचि लेने लगे थे। हाई स्कूल की शिक्षा हासिल करने के बाद लाजपत राय 1881 में गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर में दाखिला लिया। लाहौर में उस वक्त दो सुधारवदी जनांदोलनों का केंद्र था। ब्रह्म समाज और दूसरा आर्य समाज का जनांदोलन। ये दोनों जनांदोलनों का उद्देश्य राष्ट्रवादी और समाज सुधार का था। लाहौर में लालाजी पहले ब्रह्म समाज के सदस्य बनें लेकिन ब्रह्म समाज में गुटबाजी देखकर उनका वहां से मोह भंग हो गया। वे समाज में एक सुधारवादी क्रांति के लिए उत्सुक थे। उनके साथी पं. गुरुदत्त उस वक्त के एक प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता थे। गुरुदत्त और साईंदास की प्रेरणा से लाला जी ने आर्य समाज में प्रवेश किया। इसके बाद उन्होंने 1888 में तत्कालीन कांग्रेस के सदस्य बनें और भारतीय स्वाधीनता के समर में खुद को झोंक दिया। 1892 में वह हिसार छोड़कर हमेशा के लिए लाहौर आकर बस गए। यहां उन्होंने वकालत के साथ ही साथ स्वतंत्रता संग्राम की गतिविधियों और वकालत करना शुरू किया।

लाहौर आकर लालाजी ने कई तरह की गतिविधियां चलाने लगे। उन्होंने जहां आर्थिक संबल बढ़ाने के लिए 'पंजाब नेशनल बैंक' की स्थापना की वहीं पर 'दयानंद एंग्लोवैदिक कॉलेज समाचार पत्र' निकालना शुरू किया। जनता को अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ जागरूक करने और समाज सुधार के नजरिए से 'भारत सुधार' और 'आर्य मैसेंजर' में लेख लिखना प्रारम्भ किये। सामाजिक क्षेत्र

में लालाजी ने अनेक सुधारवादी कार्य किये। 1897 में भारत के मध्य प्रांतों में भयानक अकाल पड़ा। जनता त्राहि–त्राहि करने लगी। अंग्रेजी शासन ने जनता की इस त्रासदी के प्रति कोई सहानुभूति नहीं दिखाई। ऐसे में लालाजी भला कैसे चुप बैठने वाले थे। उन्होंने बिना बिलम्ब किये 'हिंदू यतीम सहायक संस्था' की स्थापना की। मध्य प्रांतों से अकाल से पीड़ित बच्चों के लिए लाहौर और फिरोजपुर में अनेक अनाथालयों की स्थापना की। आज भी डीएबी प्रबंध कमेटी के जरिए ये अनाथालय चलाए जा रहे हैं। इस तरह लाजपत राय ने जहां एक तरफ लेखनी के जरिए जनता में क्रांतिकारी और समाज सुधार की आगे धधकाते रहें वहीं दूसरी तरफ एंग्लो वैदिक कॉलेज के जरिए गुरुदत्त के साथ मिलकर लड़कों और लड़कियों को बेहतर तालीम दिलाने के लिए कार्य करते रहे। एंग्लो वैदिक कॉलेज के निर्माण की मंशा में उनके विचारों को हम बेहतर तरीके से समझ सकते हैं। उन्होंने कहा संस्कृत और हिंदी की तालीम को अंग्रेजी तालीम के साथ देना इस लिए लाजिमी है, क्योंकि इससे संस्कृत और हिंदी के संस्कार बच्चों में गहराई से बैंठ जाएंगे, जो उनके राष्ट्रवादी चेतना को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। उन्होंने बच्चों की शिक्षा पर सबसे अधिक ध्यान दिया। उनका मानना था कि यदि बच्चे शिक्षित और संस्कारित हो गए तो समाज में छाए अंधविश्वास, पाखंड और बुराइयों को खत्म करने में मदद मिलेगी। इसी परिपेक्ष्य में बच्चों की शिक्षा के लिए 'हिंदू प्राथमिक शिक्षा लीग कायम की। वह कट्टरता के सख्त खिलाफ थे। हिंदी मासिक 'हिंदू मार्डन रिव्यू' के जुलाई अंक में उन्होंने जाति प्रणाली की कट्टरता के विरोध में लिखा–हिंदू जाति प्रणाली में कट्टरता हिंदू समाज में जहर है............यह हमारी इंसानियत, हमारी न्याय भावना और हमारी सामाजिक एकता के लिए अपमान की बात है। ....हम लोग लोकराज युग में जी रहे हैं। लोकराज इस बात की मांग करता है कि सभी असमानताओं को खत्म कर दिया जाए।'' लालाजी उच्चकोटि के शिक्षा शास्त्री थे। वह मानते थे कि शिक्षा ही देश की आबादी में महत्वपूर्ण रोल अदा कर सकती है। इसी को ध्यान में रखते हुए उन्होंने 'तिलक स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स' 'नैशनल कॉलेज' और द्वारका दास लाइब्रेरी' जैसी तमाम संस्थाओं की संस्थापना की।

भारत के बाहर लालाजी ने विदेश में बसे भारतीयों को जागरूक करने और विदेशी शासन को अपनी गतिविधियों से अवगत कराने के लिए अमेरिका में 1914 में 'इडियन होम रूल लीग' की स्थापना की। इसके साथ ही उन्होंने असहयोग आंदोलन में हिस्सा लिया और गिरफ्तारी दी। उनकी गिरफ्तारी से भारत के उन सपूतों को प्रेरणा मिली जो देशहित में क्रांतिकारी बन गए थे। 1926 में उन्होंने देश में एक अलग जागृति लाने के लिए 'नैशनलिस्ट पार्टी' की स्थापना की। साथ ही उनका इंकलाबी सफर भी आगे बढ़ता रहा। 'भारत माता सोसाइटी' के साथ उनका बहुत नजदीकी रिश्ता था। उनके साथ सरदार भगतसिंह के पिता सरदार किशन सिंह, अजीत सिंह(भगत सिंह के चाचा) सूफी अंबा प्रसाद, और आनंद किशोर जैसे महान् देशभक्त, उस समय लैंड रिव्यू बढ़ा देने के खिलाफ दोआब बारी एक्ट और कलोनाइजेशन एक्ट के खिलाफ लोगों को जागरूक करने में लगे हुए थे। इसका असर यह हुआ कि सारा पंजाब उनके साथ हो गया । इससे अंग्रेजी हुकूमत लालाजी के खिलाफ हाथ धोकर पड़ गयी। लेकिन लालाजी भला कब मानने वाले थे। उन्होंने अंग्रेजों द्वारा जनता का शोषण, जुल्म और क्रूरता के खिलाफ अपना आंदोलन जारी रखा।

लाजपत राय ने शिक्षा, स्वधर्म, स्वसंस्कृति, स्वराज और स्वभाषा को भारतीय समाज के लिए जिन आधारों को लेकर प्रेरणा दी, वे आधार आज भी भारतीयता के आधार बनें हुए हैं। समाज में सबको बेहतर शिक्षा, बेहतर स्वास्थ्य, बेहतर आय के साधन और श्रम के मूल्य, स्वधर्म की प्रासंगिकता और स्वसंस्कृति की चेतना के महत्व को लालाजी ने अपने जीवन में ही नहीं रेखांकित किया बल्कि समाज के लिए इसकी महत्ता को बेहतर ढंग से प्रतिपादित किया। 30 अक्टूबर 1928 को साइमन कमिशन के भारत आने के विरोध में लाहौर के मोरी गेट के मैदान में जन सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ जो कील ठोकी वह वाकई में अंग्रेजी शासन के ताबूत में अंतिम कील साबित हुई । लाला जी के शब्द आज भी इंकलाबी आंदोलन को नई ऊर्जा देने वाले हैं। भले ही अंग्रेजों की लाठियों से उनके सिर में गहरी चोट आई हो, लेकिन इस चोट ने भारत में एक नया इतिहास का सृजन कर दिया।******

पाती आई है..

आधुनिकता की दौड़ से संस्कृति की ओर आर्ष क्रान्ति का दिसम्बर अंक

जहाँ एक ओर आजकल केवल सस्ते मनोरंजन, फैशन पर आधारित सामग्री व परिधानों का प्रचार–प्रसार करती तथा कमाई हेतु विज्ञापनों से सजी–धजी पत्रिकाएँ लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं, वहीं ऐसे आधुनिकता से आच्छादित वातावरण में इस वैदिक पत्रिका ने देश के नागरिकों को अपनी संस्कृति से तथा मनुष्य को उसके भीतर के मनुष्य से परिचित करवाने का संघर्ष प्रारम्भ किया है। सही मायने में पठन योग्य व ग्राह्य सामग्री से परिपूर्ण यह पत्रिका आमुक्त कंठ से प्रशंसनीय है।

आधुनिकता की दौड़ में अपनी संस्कृति से दूर होती हुई नई पीढ़ी को उसका वास्तविक पहचान कराती तथा वैदिक समाज व्यवस्था के लिए पूर्णतः समर्पित पत्रिका 'आर्ष क्रान्ति' का यह दिसम्बर अंक प्रखर चेतना के वाहक व मानवता के दूत आर्य लेखक व पत्रकार स्वामी श्रद्धानन्द जी को समर्पित है।

आचार्य **वेदप्रिय शास्त्री** द्वारा लिखित है– **सम्पादकीय** में मनुष्य के गुण धर्म की व्याख्या करते हुए मनुष्य और अन्यायकारी अमानुष दस्यु में अंतर किया है। खान–पान और ज्ञान की शुद्धता के अभाव में मानवीय गुणों का पतन, शासन–प्रशासन की उदासीनता, समाज में मनुष्य के पतनोन्मुखी होने का कारण बताते हुए धर्म व संस्कारी मनुष्य के नियोजन की ओर संकेत किया है। वहीं स्वामी श्रद्धानंद के बलिदान दिवस पर श्रद्धांजली स्वरूप '**दलितोद्धारक स्वामी श्रद्धानंद**' नामित लेख से स्वामी श्रद्धानंद के जीवन की दलितों के उद्धार के लिए किए गए संघर्षरत जीवन के विषय में जानकारी मिली।

राजनीति प्रेरित जाति–धर्म के प्रपंच में उलझी जनता सत्य से विमुख होकर स्वयं नहीं जान पाती कि वास्तव में जातिगत सच्चाई है क्या, ब्राह्मण क्या होता है? इसका वास्तविक परिचय '**डॉ० रूपचंद्र 'दीपक**' के आलेख (**कुम्भीधान्य ही ब्राह्मण है**) से स्पष्ट होता है।

श्री **सत्यार्थ प्रकाश** के लेख '**गुरु माहात्म्य**' के वर्णन के द्वारा सच्चे गुरु की पहचान तथा '**हे राम**' (**आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक**) के लेख के द्वारा समाज में नैतिकता के गिरते स्तर तथा तथाकथित बुद्धिजीवियों, न्यायाधीशों से संस्कृति के पतन को प्राप्त संरक्षण के प्रति लेखक ने जहाँ एक ओर चिन्ता दर्शाया है वहीं दूसरी ओर राम का आह्वाहन करते हुए राजनीतिक षड्यंत्रकारी कुचालों पर दृष्टिपात किया है।

भारतीय संस्कृति को षड्यंत्रों का शिकार बनाकर नष्ट करने की यात्रा से लेकर वर्तमान में सुसंस्कार की कमी से दिग्भ्रमित समाज का उत्कृष्ट चित्रण किया है '**सुसंस्कार की कठिन डगर पर**' लेख में **डॉ सीतेश आलोक** ने। गुलामी के पश्चात स्वधर्म वैदिक ज्ञान और अपनी गौरवमयी संस्कृति से विमुख होकर हम जिस नई गुलामी की ओर कदम बढ़ा रहे हैं इसके वास्तविक रूप, कारणों और दुष्परिणामों का प्रभावी चित्रण किया गया संत समीर जी के आलेख में। साथ ही **प्रांशु आर्य** का **अमर बलिदानी पं० रामप्रसाद बिस्मिल** के जीवन पर आधारित लेख उनके जीवन के अनछुए पहलुओं से परिचित करवाता है।

वर्तमान समाज में सोशल मीडिया का वर्चस्व दिनो–दिन जिस प्रकार बढ़ता जा रहा है और नई पीढ़ी को अपने चंगुल में जकड़ कर सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र पर अपना वर्चस्व कायम करने में सफल हो रहा है, इसका **आ० अखिलेश आर्येन्दु** जी के द्वारा अत्यन्त सजीव चित्रण किया गया है।

पत्रिका के मध्य में जगह–जगह काव्य पंक्तियों और विचारों का स्तंभ इसे आकर्षक और रोचक बनाने में सफल रहे हैं।

पत्रिका का वृहद् उद्देश्य सांस्कृतिक चेतना का उत्सर्जन तथा सांस्कृतिक गौरव और ज्ञान से परिपूर्ण समाज का निर्माण है और ज्ञातव्य है कि वर्तमान परिस्थितियों में यह कार्य अत्यंत दुरुह है, अतः इस शुचिता पूर्ण कार्य से अधिकाधिक लोगों का जुड़ना अति आवश्यक है आशा है कि यह लक्ष्य शीघ्र प्राप्त होगा।

मेरी असीम शुभकामनाएँ पत्रिका '**आर्ष क्रान्ति**' के साथ हैं।

– मालती मिश्रा 'मयंती'

सम्पादक जी,

आर्ष क्रांति नमस्ते। बहुत बहुत धन्यवाद। आपका प्रथम अंक दूरस्थपटल पर पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, ऐसा लगता है कि परम्परा से हटकर कुछ नवीन शैली में रुचि कारक लगा । सम्पादकीय भी सम्पादनकला से ओतप्रोत है। लेख, कविताओं का संकलन भी उत्तम सामग्री से ओतप्रोत है। समयानुकूल उदाहरण के लिए उन्नीस दिसंबर को पं रामप्रसाद बिस्मिल का वलिदान दिवस के शुभ अवसर पर उनके जीवन दर्शन पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है, अच्छा लगा। संक्षेप में यह पत्रिका **आर्ष क्रांति** समाज में आर्ष ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रांतिकारी योगदान देगी, ऐसा मुझे लगता है। आर्ष क्रांति सनातन आर्ष परंपराओं को प्रकाशित और प्रसारित करके ऋषि मिशन को ऊंचाइयों पर ले जाने में सक्षम हो हमारी हार्दिक शुभकामनाएं। धन्यवाद नमस्ते।

आर्ष विचारो का सेवक
पंडित विमलकुमार वैदिक प्रवक्ता हरदोई
दूरभाष 94512096826394132050

आर्यों की महान विद्या

ईश्वर प्रदत्त चार वेद

वेद	प्राप्तकर्त्ता	विषय
ऋग्वेद	ऋषि अग्नि	ज्ञान
यजुर्वेद	ऋषि वायु	कर्म
सामवेद	ऋषि आदित्य	उपासना
अथर्ववेद	ऋषि अङ्गिरा	विज्ञान

ऋषिकृत् ग्रन्थ

छः अङ्ग

१. शिक्षा
२. कल्प
३. व्याकरण
४. निरुक्त
५. छंद
६. ज्योतिष्

छः उपाङ्ग

दर्शन	रचियता
१. पूर्वमीमांसा	जैमिनि मुनि
२. वैशेषिक	कणाद् मुनि
३. न्याय	गौतम मुनि
४. योग	पतंजलि मुनि
५. सांख्य	कपिल मुनि
६. वेदान्त	व्यास मुनि

वेद	उपवेद	उपवेद का विषय	ब्राह्मण ग्रन्थ
ऋग्वेद का	१. आयुर्वेद	वैद्यक शास्त्र	१. ऐतरेय ब्राह्मण
यजुर्वेद का	२. धनुर्वेद	राजनीति विद्या	२. शतपथ ब्राह्मण
सामवेद का	३. गान्धर्ववेद	गानविद्या	३. साम ब्राह्मण
अथर्ववेद का	४. अर्थवेद	शिल्प विद्या	४. गोपथ ब्राह्मण

दस उपनिषद्

१. ईश २. केन ३. कठ ४. प्रश्न ५. मुण्डक
६. माण्डूक्य ७. ऐतरेय ८. तैतिरीय ९. छान्दोग्य १०. बृहदारण्यक

ऋषि निर्देश - इनमें भी जो-जो वेद विरूद्ध प्रतीत हो उसे छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त, स्वतः प्रमाण, अर्थात् वेद का प्रमाण वेद से ही होता है ब्राह्मणादि ग्रंथ परतः प्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है।

आर्य विद्या का प्रवेश द्वार-"सत्यार्थप्रकाश एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका"